आनन्दामृत

अथवा

जीवन की संस्कृति

लेखक

प्रो० सुधाकर एम० ए०

प्रकाशक

शारदामन्दिर

१७ बारहखंभा, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण] संवत १९९० [।।=)

प्रकाशक
शारदा-मन्दिर
१७ बारहखंभा रोड
नई दिल्ली

मुद्रक
प्रतापनारायण चतु
भारतवासी प्रे
दारागंज प्रया

वक्तव्य

आधुनिक जीवन की दौड़-धूप मे गहन, गम्भीर तथा वहुमूल्य वातों को हम भूलते चले जा रहे हैं। उनके स्थान में अस्थिर, क्षणिक तथा व्यर्थ के आडम्वरों मे हम दिलचस्पी ले रहे हैं। हमारे वच्चों का स्वाध्याय केवल उपन्यासो तथा कहानियों तक परिमित है। उनके हाथों मे हम ऐसा साहित्य दे रहे हैं जो जीवन के वास्तविक संग्राम तथा प्रतिदिन के संघर्ष में काम नही आता।

हमारे दुर्भाग्य से हमारी स्कूली पुस्तकें भी किसी ऊँचे आदर्श को सामने रख कर नहीं लिखी जातीं। पुस्तक-प्रकाशकों का भी इस ओर अधिक ध्यान नहीं है। ऐसी दशा में हम देश की भावी सन्तानों से क्या आशा कर सकते हैं? "आनन्दामृत"

तथा इसके सदृश लेखक की अन्य पुस्तकों के द्वारा वर्तमान साहित्य की इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया गया है।

"आनन्दामृत" में लेखक ने ऐसे विचार प्रकट करने का भरसक प्रयत्न किया है जो भारत-सन्तान की नैतिक तथा मानसिक उन्नति में सहायक हों। गम्भीर विचारों को सरल भाषा में लिख कर युवकों तथा युवतियों के सामने ऐसी विचार-सामग्री उपस्थित की गई है जो उन्हे स्वयं विचार करने के योग्य बना सकती है। जीवन को सुसंस्कृत बनाने के लिए जिन विचारों की आवश्यकता होती है उन्हीं पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है।

लेखक को पूर्ण आशा है कि सहृदय पाठक इन विचारों से लाभ उठावेंगे। यदि ये विचार उन्हें अपनी जीवन-यात्रा मे सहायक सिद्ध हो तो वह अपने प्रयास को सफल समझेगा।

सूची

सूची

अपने मन के स्वामी बनो

कब तक ठोकरें खाओगे ? लालसा पीछा नहीं छोड़ती तुम कहते हो मेरी तृप्ति नहीं होती। तृष्णा नहीं मिटती। तृप्ति कैसे हो ? तृष्णा कैसे मिटे ? लालसा के स्रोत बन्द करो। मन का शिक्षण अपने हाथ में लो। 'मन एव मनुष्याणां कारणं सुख दुःखयोः।'

यह सत्य है कि मन का साधना कठिन है, परन्तु उसे साधे बिना गति नहीं। तुम्हारा सुख दुःख, तुम्हारी प्रसन्नता और स्वास्थ्य तुम्हारे मन के अधीन हैं। हमारे संकट हमारे अपने मन की उपज हैं। यदि तुम संकटों से बचना चाहो तो अपने मन की आलोचना करो। अपनी इच्छा, अभिलाषा, संकल्प-विकल्प का ध्यान पूर्वक अवलोकन करो। यदि वे कुमार्ग को प्रेरणा करते हैं तो उन पर प्रतिबन्ध लगाओ। उनकी पूर्ति

को रोको। उनकी वृद्धि मे वाधा डालो। इस प्रकार के लगातार व्यवहार से तुम मन को अपने वश में कर लोगे। इसमें समय लगेगा, प्रयत्न करना पड़ेगा; परन्तु मन अपने वश मे हो जायगा। मन जीते जग जीत। मन के जीतने में तुम्हारी जीत है, मन के हारने में तुम्हारी हार। उठो दृढ़ प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने मन के स्वामी वनोगे।

पराधीनता

पराधीनता से बढ़कर कोई पाप नहीं। यदि पक्षी को पिञ्जरे मे डाल दो तो वह फड़फड़ाता है। छूट कर बाहर निकलना चाहता है। भला आकाश के स्वच्छ वायु और विस्तृत स्थान को छोड़ कर वह क्यो पिञ्जरे की काल कोठरी मे बन्द रहना स्वीकार करे ?

जब बच्चा चलने योग्य हो जाता है तो माता उसे स्वयं चलने देती है। उसकी अंगुली पकड़ना छोड़ देती है। बच्चे को अपने आप चलने मे जो आनन्द आता है, उसका अनुभव हम नहीं कर सकते। वह उठता है। गिरता है। पुनः उठता है और चलने लगता है। इस अभ्यास से उसके अङ्ग पुष्ट होते हैं। वह दौड़ने और कूदने लगता है। उसके अङ्गो में स्फूर्ति का सञ्चार हो जाता है।

वहां बच्चा युवावस्था मे अपने बन्धनों को काटना चाहता

है। समाज-बन्धन, जाति-बन्धन, देश-बन्धन और आदेश-बन्धन सब को बोझ समझता है। वह मनमानी करना चाहता है। स्वतन्त्र रहना चाहता है।

यही बात जातीय जीवन मे भी पाई जाती है। जिस जाति में अपने हिताहित का विचार पैदा हो गया है वह दूसरो के अधीन नही रहना चाहती। प्रत्येक जाति का अपना लक्ष्य-विशेष होता है। उसकी पूर्ति, बिना स्वतन्त्रता के नहीं हो सकती। जब हम अपनी पराधीनता को पाप मानते हैं तो दूसरों की पराधीनता को भी पाप समझना चाहिए।

परन्तु आश्चर्य यह है कि लोग दूसरो को पराधीनता के के बन्धन काटने मे तत्पर नही होते। अपनी पराधीनता से मुक्ति का आनन्द तभी आ सकता है जब कि हमारे साथ रहने वाले भी पराधीनता के बन्धन से मुक्त हो।

स्वाधीनता

स्वाधीनता की ध्वनि अब चहुँ ओर से आ रही है। देश इस ध्वनि से गूञ्ज रहा है। क्यों न हो? स्वाधीनता की सुरीली तान हृदय को तरङ्गित करती है। जब एक बार स्वाधीनता शब्द का उच्चारण जिह्वा से हो जाता है तब उसकी चाट फिर नहीं मिटती। जब स्वाधीनता की चाह एक बार जागृत हो जाती है तब उसकी समाप्ति उसकी प्राप्ति में ही होती है।

स्वाधीनता एक गम्भीर भाव है, यदि गम्भीरता का अंश स्वाधीनता से निकाल दिया जावे तो उसका मूल्य टूटी बांसुरी से अधिक नहीं पड़ता। वह शब्द करती है, परन्तु स्वर से शून्य। वह बजती है, परन्तु संगीत का उसमें अभाव है। अतः स्वाधीनता के पुजारी को गम्भीरता हाथ से न जाने देनी चाहिए।

स्वतन्त्रता कौन नहीं चाहता? यह सब को प्रिय लगती

है। परन्तु सब लोग इसका अर्थ नहीं समझते। कई लोग स्वाधीनता का तात्पर्य्य "मनमानी करना" समझते हैं। जैसा मैं चाहूं वैसा यदि मुझे करने को मिल जावे तो मैं स्वाधीन हूँ अन्यथा पराधीन।

स्वाधीनता का यह अर्थ ठीक नहीं। यह स्वाधीनता नहीं स्वच्छन्दता है। स्वाधीनता का वास्तविक अर्थ यह है, "जैसा मुझे उचित है वैसा करूँ।" औचित्य का प्रतिबन्ध स्वाधीनता के साथ सदा जुड़ा रहता है। यह प्रतिबन्ध स्वाधीनता की जान है। इसके हटा देने से स्वाधीनता चपलता बन जाती है। चपलता बढ़ते बढ़ते निष्ठुरता मे परिणत हो जाती है। अन्त मे स्वाधीनता का सुन्दर स्वरूप स्वच्छन्दता के घृणित कुरूप मे बदल जाता है।

अतः वास्तविक स्वाधीनता की पूजा के अधिकारी बनो। उसके प्रदान किए हुए भार को उठाने के योग्य बनो, तभी कल्याण होगा अन्यथा नही।

卐 卐 卐

प्रार्थना

बीसवीं शताब्दी मे लोगो का विश्वास प्रार्थना में कम हो चला है। प्रार्थना को व्यर्थ का विलाप समझा जाता है। जब हाथ पैर हिलाने से काम चलता है तो मौन धारण कर के व्यर्थ के गिड़गिड़ाने से क्या प्रयोजन ?

प्रार्थना गिड़गिड़ाने का नाम नही। प्रार्थना कर्म-शून्य बनना नहीं सिखाती। प्रार्थना हृदय के उद्गार का नाम है। यह मनुष्य की जीवन-गाड़ी के लिये बिजली और भाप का काम देती है। प्रार्थना, कर्म-शून्य नही अपितु कर्मशील बनाती है।

प्रार्थना मे निःसन्देह हम ईश्वर से कुछ माँगते हैं। जब तुम ईश्वर से माँगो तो जगत् स्वामी से वह पदार्थ माँगो जो तुमको संसार नही दे सकता और जिसके पा लेने पर संसार के अन्य छोटे मोटे पदार्थ अपने आप मिल जाते हैं। वेद की

प्रार्थनाएँ हमें बुद्धि माँगने की शिक्षा देती हैं। बुद्धि सबसे बड़ा धन है। लोक-धन इसी पर आश्रित रहता है। आप भी ईश्वर से सदैव इसी धन की याचना करें।

प्रार्थना क्यों करें, यह विवाद व्यर्थ है। इस विवाद के होते हुए भी ईश्वर-प्रार्थना की प्रथा अविशय जारी है। कारण यह है कि प्रार्थना की प्रवृत्ति एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अल्पज्ञ सदैव सर्वज्ञ का आश्रय लेता है। सान्त अनन्त की निकटता चाहता है।

प्रार्थना न्यूनता की सूचक है। जब कभी हम अपने भीतर न्यूनता का अनुभव करते हैं तब हमारा हृदय उस की पूर्ति के लिये प्रभु के सन्मुख याचना अथवा प्रार्थना का हाथ पसारता है।

प्रार्थना करो, परन्तु सच्चे हृदय से। मन में स्वाभाविकता लाओ। दिखलावा छोड़ दो। अपने दिन भर के झगड़ों बखेड़ों से कुछ शान्त समय निकाल कर प्रभु के चरणों में बैठो। तुम अपने आप को शक्ति के समीप पाओगे। शक्ति का सन्निकर्ष शक्ति उत्पन्न करेगा। शक्ति के उत्पन्न होजाने पर तुम बड़े बड़े कार्य्यों का सम्पादन कर सकोगे। अतः प्रार्थना से कभी विमुख न होना चाहिए।

मैत्री

मैत्री की चर्चा तो बहुत है परन्तु इसके अस्तित्व का अभाव हो रहा है। पुरुष जिन लोगों के साथ दो चार हँसी की बातें कर लेते हैं उन्हें अपना मित्र कहने लग जाते हैं। स्त्रियाँ भी जिनके साथ दो चार क्षण मिल बैठती हैं उन्हे सखी कह कर पुकारने लगती हैं। "मित्र" और "सखी" शब्दो का यह दुरुपयोग है।

मित्र का मिलना इतना सहल नही। सखी की प्राप्ति इतनी सुगम नहीं। जब साधारण सी वस्तु को लेने के लिए बाजार मे तुम्हे कई दुकानो पर फिरना पड़ता है, जब भाव-ताव, मोल आदि के निश्चय करने में तुम्हे पर्याप्त समय देना पड़ता है तब न जाने मित्र जैसी अमूल्य वस्तु को खोजने में इतनी उदासीनता क्यो दिखाई जाती है ?

इस उदासीनता का फल यह हुआ है कि मित्र- और सखी-

भाव का अभाव सा हो गया है। मित्र-भेष में अमित्र विचरने लगे हैं। मित्रों का परस्पर विश्वासघात आज एक साधारण घटना हो गई है। इसके उदाहरण आए दिन कर्णगोचर होने लगे हैं।

वेद मे परमात्मा को मित्र या सखा कह कर पुकारा गया है। परमात्मा के मित्र होने का तात्पर्य्य यह है कि वह विश्व का सहायक है। सहायता मैत्री का सार है। सहायता बिना सहानुभूति के नही हो सकती। जिसको तुम अपना मित्र कहते हो या जिसका मित्र तुम अपने आप को समझते हो, क्या उसका हृदय सहायता या सहानुभूति के भाव से सर्वदा द्रवित रहता है?

जब मित्र के साथ तुम्हारी आंखे चार होती हैं तब प्रेम-विद्युत प्रवाहित हो जानी चाहिए। जब तुम मित्र के साथ हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ पसारो तब उस हाथ के साथ हृदय भी उसकी ओर जाना चाहिए। उस समय मित्र के प्रत्येक अङ्ग और चेष्टा से यही विदित हो कि दो हृदयों की सन्धि हो रही है। जिस प्रकार दिन और रात्रि की सन्धि के समय आकाश लालिमा से आच्छादित हो जाता है और शोभायमान दीखता है, उसी प्रकार दो मित्रों की प्रेम-भरी भेंट के समय उनके मुख-मण्डल शोभा की आभा से परिपूर्ण हो जाने चाहिएँ।
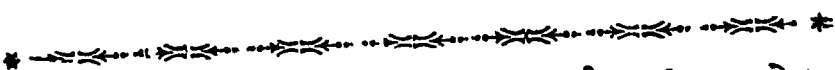
मित्र और सखी शब्दों का प्रयोग व्यर्थ कभी न करो। परिचित को परिचित समझो, और मित्र को मित्र। प्रभु की मैत्री के समान अपनी मैत्री को बनाओ। हे परमात्मन्! हमें अपने समान मित्र दो।

सफलता

जीवन की सफलता किस में है ? क्या धन के उपार्जन में सफलता है ? क्या यश और कीर्ति के सम्पादन में सफलता है ? धनिकों से पूछिये। उन से पूछिये जिनको संसार यश और कीर्ति से सुसज्जित कर चुका है। वे इस प्रश्न का उत्तर नकार से देते हैं। धन, यश, और कीर्ति बड़े चित्ताकर्षक पदार्थ हैं, उनके उपार्जन में संसार पर्याप्त प्रयत्न कर रहा है, परन्तु वे जीवन-साफल्य के सूचक नही कहे जा सकते।

धन, यश और कीर्ति की अपनी सफलता बिना चरित्र के सिद्ध नहीं होती। अतः चरित्र ही सफलता की कुञ्जी समझनी चाहिए। अपने चरित्र की शक्ति द्वारा मनुष्यत्व का उपार्जन करो। अपने व्यवहार और आचार में इतने ऊंचे
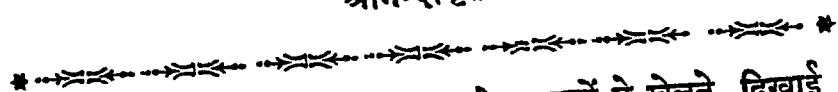
उठो कि धन यश और कीर्ति तुम्हारे चरणों मे खेलते दिखाई देवें। प्रलोभनों पर विजय पाओ। अवस्थाओं को जीतो और अपने चरित्र का सिक्का दूसरों पर बिठाओ। यही सच्ची सफलता है।

नम्रता

सब धर्म्मों मे नम्रता का विशेष बखान मिलता है। नम्र स्वभाव को सुन्दर स्वभाव कहते हैं। ईसा ने तो यहाँ तक कहा है कि स्वर्ग का राज्य नम्र व्यक्तियो को ही प्राप्त होगा। परन्तु मेरी दृष्टि मे इस लोक का राज्य, कीर्ति, श्रेय और विभूति भी नम्र मनुष्यो के हाथ में रहते हैं। नम्रता का व्यवहार कैसा मीठा और चित्ताकर्षक होता है? जिस परिवार मे नम्रता निवास करती है उसमें ही देवता निवास करते हैं। नम्रता के बिना स्वर्ग भी रूखा, फीका और सारहीन सिद्ध होता है। यदि मुझसे पूछा जाय कि मनुष्य-स्वभाव के अन्तर्गत तुम किस गुण को सर्वश्रेष्ठ मानते हो तो मैं निःसङ्कोच कहूँगा कि वह गुण नम्रता है।

दैनिक जीवन में भी हम देखते हैं कि नम्रता हमारे पारस्परिक व्यवहार को मीठा बनाती है। नम्र व्यक्ति अपने भाषण
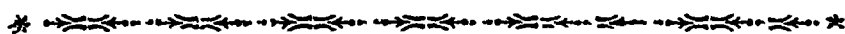
में कितना सौजन्य तथा माधुर्य्य दिखाता है ! दूसरो को आह्लादित करने मे अपने मधुर, सुन्दर और सुशील व्यवहार से कितना काम लेता है ! अपनी नम्रता का प्रकाश अपने चारो ओर फैलाओ । स्वयं नम्र वनो, दूसरों को नम्र वनने की शिक्षा दो । अपनी विद्या, अपने धर्म्म, अपने देश और जाति का गौरव तुम अपने नम्र व्यवहार से ही वढ़ा सकते हो। संसार मे सुख-प्राप्ति के अनेक साधन हैं। नम्रता भी उनमे एक वड़ा साधन है। उसका सदैव अवलम्वन करो ।

वेदवाणी

वेद-मन्त्रों को तुमने कण्ठस्थ कर लिया है, यह बहुत अच्छा है। तुम समझते हो कि इससे वेदवाणी की रक्षा होती है। यह भी ठीक है, परन्तु रक्षा रक्षा मे भेद होता है। मन्त्रों के कण्ठस्थ कर लेने से उनकी इतनी रक्षा नहीं होती जितनी उन मन्त्रो को जीवन-वाणी बना लेने से होती है। यदि तुम अपने आप को ऐसा परिमार्जित कर लो कि तुम्हारा सारा जीवन वेदवाणी का उच्चारण करने लग जावे तो उस वाणी की कितनी रक्षा होगी !

वेद-वाणी तुम्हारे हृदय मे प्रवेश करे, तुम्हारी अन्तरात्मा मे निवास करे। हृदय को बदलो, हृदय की आशाओ को बदलो, तभी हृदय का हृदय से मिलाप होगा। वेदवाणी द्वारा यह परिवर्तन सम्भव है। प्रभो ! इस परिवर्तन को प्रदान करो।

✡ ✡ ✡

लक्ष्य की खोज

मेरे जीवन का क्या लक्ष्य है? मैं किस लिए इस संसार मे आया हूं? ईश्वर मुझसे क्या करवाना चाहते हैं? इस प्रकार के प्रश्न बार बार हमारे हृदय मे उठते हैं। हम झुंझलाते हैं, परन्तु यह प्रश्न हल होने नहीं पाते। अपने लक्ष्य की खोज में हमें व्याकुल होना पड़ता है।

हमारा आश्चर्य व्यर्थ है। लक्ष्य का लम्बा प्रश्न छोड़ दो। अपने निकटवर्ती कर्तव्य को देखो, उसे पहिचानो। यही निकटवर्ती कर्तव्य तुम्हारा लक्ष्य है। इसी का पालन ईश्वर तुम से चाहते हैं। अपने निकटवर्ती कर्तव्य का पालन करते जाओ।

कर्तव्य-पालन से तुम्हारी अन्तश्चक्षु उज्ज्वल होगी। दूर की बातें तुम्हें दीखने लगेंगी। दूरवर्ती कर्तव्य भी स्पष्ट होने लगेंगे, परन्तु नियम यह है कि यदि तुम ईश्वरादेश जानना चाहो, तो अपने निकटवर्ती कर्तव्य का पालन करो।

यदि ईश्वर तुमसे कोई बड़ा कार्य्य सम्पादन कराना चाहते हैं, यदि तुम्हें किसी ऊँची स्थिति में ले जाना चाहते हैं, तो उस की चिन्ता का भार तुम स्वयं ईश्वर पर डाल दो। जो तुम्हारा प्रति दिन का कर्तव्य है, तुम उसके पालन में देरी मत करो। उसके पालन में देरी करना लक्ष्य की खोज को लम्बा करना है।

हां या नां

हां या नां यह दो छोटे से शब्द हैं। इनके उच्चारण में पल भर की देर नहीं लगती, परन्तु इनका उचित प्रयोग बहुत कम लोग जानते हैं। ज्ञान, बल और पराक्रम का अभिमान दिखाने वाले तो बहुत हैं, परन्तु ठीक समय पर हां या नां कहने वाले कम दिखाई देते हैं।

जब प्रलोभन तीव्र रूप धारण करके तुमको अपनी ओर खींच रहे हों, जब स्वार्थ सीधे मार्ग से हटा कर तुमको कुमार्ग में ले जावें तो बल-पूर्वक "नां" कह दो। उस "नां" से गुप्त शक्ति प्रकाशित होगी जो तुम्हे सन्मार्ग से विमुख न होने देगी।

जब संकटों से घिरा हुआ सत्य तुम्हें आह्वान करे, जब दूसरों की सेवा सहायता का कष्ट-साध्य भाव तुम्हे धीमे शब्दों मे बुलावे, तो तुम तुरन्त ऊँची स्वर से "हां" कह दो। चाहे
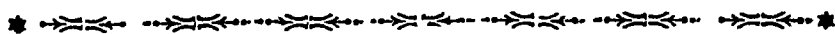
संसार तुम्हारा स्वागत करे या न करे, परन्तु तुम सत्य का सदा स्वागत करो।

"हां" "नां" कहना सीखो। इसके सीखने मे तुम्हे कष्ट सहने पड़ेगे, परन्तु उनकी चिन्ता मत करो। जीवन का वल नियन्त्रणा से बढ़ता है और नियन्त्रणा का प्रारम्भ "हां" या "नां" के ठीक प्रयोग से होता है। जिसे तुम सत्य समझो उसके प्रति "हाँ" कह दो। जिसे तुम असत्य मानो उसके प्रति सदा "नां" कह दो। "हां" "नां" के ठीक प्रयोग मे ही तुम्हारा कल्याण निहित है।

नित्य-श्रम

कई लोग दिन भर के श्रम से तंग आ जाते हैं। जब वे अपने दैनिक जीवन के चक्र पर निगाह डालते हैं तो उसे नीरस पाकर झुंझला उठते हैं। दैनिक श्रम को बोझ समझ कर उसके भार से मुक्त होना चाहते हैं। विश्राम की लालसा से दिन में कई बार ठण्डी सांस ले कर वे कह उठते हैं " हे ईश्वर! हम कोल्हू के बैल के सदृश कब तक पिलते चले जावेंगे?"

उनका यह क्षोभ व्यर्थ है। दैनिक श्रम से बढ़कर मनुष्य-जीवन के लिए और दूसरा नियन्त्रण नहीं हो सकता। धन्य हैं वे जो अपने पसीने की कमाई से अपनी पालना करते हैं। आलस्य और प्रमाद का जीवन भी कोई जीवन है? दिन भर नरम गदेलों पर लेटे रहना मृत्यु की लेट लगाना है।

दिन भर कार्य्य के सूत्र में जो बन्धे रहते हैं वे ही सुख के अधिकारी बनते हैं। सुख सदा श्रम में गुप्त रहता है। दुःख सदा
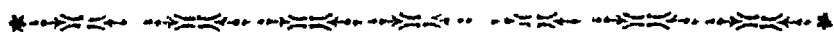
आलस्य और प्रमाद का साथी होता है। श्रम ही ईश्वरीय शिक्षणालय है। उसमें शिक्षा पाकर जो लोग शिक्षित होते हैं, वे कभी जीवन में हानि नहीं उठाते।

अतः दिन भर के श्रम की चक्की दिल लगा कर पीसो। जितना अच्छी तरह पीसोगे उतने अधिक सुख के भागी बनोगे। घबराने की कोई बात नहीं। धैर्य्य धर्म्म है। श्रम का स्वागत करो। भाग्य तुम्हारा स्वागत करेगा।

ईश्वरीय दान

ईश्वर के दान का कोई अन्त नहीं। वह देता है और दिल खोल कर देता है। इतना देता है कि लेने वाला उसे सम्भाल नहीं सकता, परन्तु लेने वाला अधिकारी होना चाहिए। यदि लेने वाले को पूर्व जन्म ने अधिकार नही दिया तो इस जन्म मे उसे अधिकारी वनना चाहिए। विना अधिकार के ईश्वरीय राज्य मे किसी की नहीं चलती।

अविश्वासी पूछता है ईश्वर ने मुझे क्या दिया है ? परन्तु विश्वासी अपने भीतर और वाहर सव कुछ ईश्वरीय देन देखता है। क्या यह ठीक नहीं कि तुम्हारी प्रत्येक शक्ति का स्रोत स्वयं परमात्मा है ? मन, वुद्धि और आत्मा अपनी सत्ता और सहायता के लिए सर्वदा प्रभु के आश्रय रहते हैं। यदि तुम्हे इन पर विश्वास है तो सदा भरपूर रहोगे। यदि सन्देह से

तुम्हारी अन्तरात्मा संतप्त हो रही है तो सारा संसार भी तुम्हें सन्तुष्ट न कर सकेगा।

तृप्ति मन से होती है न कि धन से। अपने भीतर दृष्टि डालो। यदि वहाँ तुम्हे प्रेम, श्रद्धा, सत्य, सन्तोष, सेवा, सुजनता आदि भाव मिलते हैं तो तुम सब से बड़े धनी हो। उत्तम भावों का बहुमूल्य धन रुपये पैसे से प्राप्त नहीं हो सकता। उसका मूल्य सोने चान्दी के टुकड़ों मे नहीं पड़ता। धन्य हैं वे जो इस धन के धनी हैं। यदि यह धन ईश्वर ने तुम्हे प्रदान किया है तो इस दान के लिए सदा उसको विनम्र धन्यवाद दो।

ईश्वर मेरे साथ है

यदि तुम यह धारणा स्थिर कर लो कि ईश्वर मेरे साथ है, तो तुम अनेक संकटो और क्लेशों से एकदम दूर हो जावोगे। जैसे बच्चा अपने आप को माता की गोदी मे सुरक्षित समझता है और उसे किसी बात की चिन्ता नहीं रहती वैसे ही एक भक्त ईश्वर के निकट अपने आपको एक अभेद्य दुर्ग मे देखता है। यदि विचारो का मूल्य है तो इस धारणा का मूल्य सब से अधिक है।

ईश्वर के सहवास का भाव शनैः शनैः बढ़ता है। इसके लिए अभ्यास अपेक्षित है। मन की साधना अपेक्षित है। प्रति दिन इस धारणा को धारण करो कि प्रत्येक घटना मे ईश्वर का हाथ है। ईश्वरीय सत्ता चहुँ ओर व्यापक है। इस निरन्तर धारणा से तुम्हारे अन्तश्चक्षु खुल जाएंगे और तुम विश्वव्यापी सत्ता को अपने साथ, नहीं नही, अपने भीतर देखने लग जाओगे।

❀ ❀ ❀

हृदय-स्पर्श

बहुत से लोग तुम्हारे निकट आना चाहते हैं। तुम्हारा सहवास अथवा संसर्ग पसन्द करते हैं। तुम्हें मित्र कह कर पुकारना चाहते हैं। परन्तु तुम मे दूरी उनके रास्ते में रुकावट है। क्या तुम्हे कोई ऐसा उपाय नही सूझता जिसके द्वारा ऐसे लोगो को तुम अपने हृदय-स्पर्श का परिचय दे सको ?

हृदय-स्पर्श का प्रभाव बहुत गहरा होता है। इस प्रभाव से दूसरों को प्रभावित करो। कभी कभी अपरिचित व्यक्तियो को अपने यहॉ न्यौता दो। उनके प्रति अपने शिष्टाचार का प्रकाशन करो। उनको अपनी सेवा शुश्रूषा दिखा कर हृदय-स्पर्श की शीतल छाया में बिठाओ। फिर देखो, तुम्हारे जीवन का माधुर्य्य कैसे प्रसरित होता है !

तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे पास आवे और तुमसे लाभ उठावे। यह अभिमान-सूचक प्रवृत्ति ठीक नही। तुम
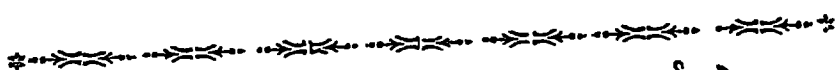
दूसरों के पास जावो और उनको अपने हृदय-स्पर्श से उन्नत करो। धन धान्य की सहायता संसार मे कोई वड़ी सहायता नही। हृदय-स्पर्श द्वारा जो तुम दूसरों को सहायता दे सकते हो वह वहुमूल्य सहायता है।

शब्दों की कञ्जूसी

हृदय-स्पर्शी उदार शब्दो के प्रयोग बिना सिद्ध नहीं हो सकता। तुम्हे शब्दो की कञ्जूसी छोड़नी पड़ेगी। अपने सामने एक दीन, हीन, दरिद्र को देख कर यदि तुम उसको पैसा देने का सामर्थ्य नहीं रखते तो उदार शब्दों के कहने में कृपणता क्यों करते हो ? सम्भवतः वह दीन तुम्हारे शब्दों से ही परितुष्ट हो जावे, उसकी भूख प्यास मिट जावे। जो लोग मीठे शब्दों द्वारा दूसरो का सन्मान नहीं करते, वे शब्द-कञ्जूस कहलाते हैं। शब्द-कञ्जूसी पैसे की कञ्जूसी से अधिक बुरी है। पैसा देने मे यदि तुम्हारा पैसा घटता है तो शब्द-दान देने मे तो तुम्हारा कुछ घटता नही। फिर मीठे शब्द कहने मे सङ्कोच क्यों करते हो ?

हाँ, यहाँ पर भी अभ्यास की बात ज़रूर है। दूसरो के
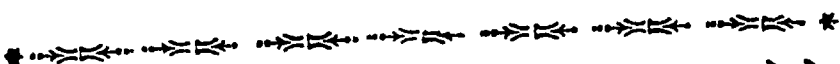
प्रति मीठे उदार और उत्साह-पूर्ण शब्द बार २ प्रयोग करने से तुम्हारी शब्द-कञ्जूसी दूर हो जावेगी । देना देने से आता है, लेना लेने से । दो; खूब दो; बार २ दो । यदि पैसा नहीं दे सकते तो शब्दों की भरमार दो ।

लेना और देना

लेने से संसार में कोई बड़ा नहीं बना। बड़प्पन देने में ही रहता है। देने का नाम उपकार है, लेने का नाम स्वार्थ। उपकार धर्म्म का मार्ग है, स्वार्थ अधर्म्म का।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि संसार मे बड़े बड़े प्रतापी मनुष्य पैदा हुए और मर गए। इतिहास के पृष्ठों के अतिरिक्त उनका नाम कहीं अङ्कित नहीं हुआ। धन, जन, यश और पराक्रम के वे मालिक थे। लेने में और संचय करने में उनका दिन रात व्यतीत होता था।

दयानन्द, बुद्ध और ईसा के नाम मनुष्यों के हृदयों पर अङ्कित हैं। वे संसार मे देना सीखे थे। जीवन पर्यन्त संसार को देते रहे। अब संसार उसके बदले मे सदैव के लिए अपनी श्रद्धा और भक्ति उनको दे रहा है।

इतिहास को छोड़ कर अपने सामने देखो। गान्धी महात्मा

का नाम कौन नहीं जानता ? बच्चा २ इस प्रातः-स्मरणीय नाम का उच्चारण कर रहा है। इस महात्मा के जीवन का रहस्य भी देने में है। वह सब कुछ देने को सर्वदा तैयार है। अपने प्राणों की आहुति देने मे उसे जरा सङ्कोच नहीं।

अतः लेना कम करो, देने मे रुचि बढ़ाओ। जिस लेने में देना नहीं वह भार मात्र है। यदि लेना भी हो तो देने के लिए लो। उसी लेने में आनन्द है।

ईश्वर की कृपा को न भूलो

तुम खाना, पीना और पहरना नहीं भूलते, तुम उठना, बैठना; चलना, फिरना नहीं भूलते, तुम पेट के धन्दे, जीवन निर्वाह के उपचार नही भूलते, वाणिज्य व्यापार तथा अन्य सांसारिक व्यवहार भी तुम नहीं भूलते, तो फिर ईश्वर की कृपा जिसके द्वारा तुम्हारे सारे कृत्य सिद्ध हो रहे हैं क्यों भूल जाते हो ?

तुम्हारे जीवन का पल पल ईश्वर की कृपा पर अवलम्बित है। चाहे तुम ईश्वर की कृपा को भूल जावो, परन्तु ईश्वर अपनी कृपा-प्रदान के लिए तुम्हे नही भूलते। तुम्हारा बल, तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा यौवन तथा अन्य अभिमान के साधन ईश्वरीय कृपा द्वारा ही प्राप्त होते हैं। जब तुम सो जाते हो तब भी उसकी कृपा का हाथ तुमसे दूर नहीं होता।

अपने यौवन की मस्ती को छोड़ो। अपने गर्व से मुँह मोड़ो। अपनी वास्तविक स्थिति को पहिचानो। तब तुम्हारी अन्तरात्मा जागृत होगी। तुम्हे ईश्वर-कृपा का बोध होगा। ईश्वर-कृपा को न भूलो, यही तुम्हारी उन्नति का रहस्य है।

हमारी परीक्षा

तुम विद्यालयों की परीक्षाओं को बड़े महत्त्व की चीज समझते हो। उनकी तय्यारी में दिन रात एक कर देते हो। अपना स्वास्थ्य, अपना तन, मन, धन सब खो बैठते हो। परन्तु इन परीक्षाओं के बदले तुम्हे क्या मिलता है? उपाधि।

उपाधियों को पाए हुए युवक और युवतियाँ जीवन के शिक्षणालय मे प्रायः पिछड़े हुए दिखाई देते हैं। जो परीक्षाएं पग पग पर उनका सामना करती हैं, उन मे से उत्तीर्ण होने की सामर्थ्य वे अपने भीतर नहीं पाते।

तुम्हारी जीवन-परीक्षा पल पल में हो रही है। उसके प्रश्न-पत्र क्षण क्षण मे लिखे जा रहे हैं। हमारा जीवन-व्यवहार उन प्रश्नों का उत्तर है। ऐसी बड़ी परीक्षा, ऐसी कड़ी परीक्षा, उसमे बैठने के लिए तुम क्या तय्यारी कर रहे हो?
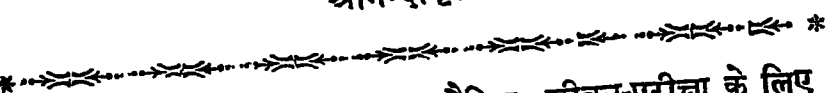
याद रक्खो, यदि तुम इस दैनिक जीवन-परीक्षा के लिए भरसक प्रयत्न करते रहोगे तो तुम्हे अन्य किसी परीक्षा से झिझक न होगी। इस परीक्षा की तय्यारी के लिए जीवन-शिक्षणालय सदैव खुला है। परीक्षक चहुँ ओर उपस्थित हैं, सावधान होकर जीवन-प्रश्नों का उत्तर चरित्र के पत्र पर लिखते जाओ।

छिद्रान्वेषण

दूसरो की त्रुटियो को सदा देखते रहने का अभ्यास ठीक नही। यदि हम सदैव दूसरो की कमजोरियों को देखते रहेंगे तो दूसरों के गुण देखने की इच्छा जाती रहेगी। हमारा काम गुणों से है, छिद्रों से नही। गुण हमे वड़ा वनाते हैं, मान प्रदान करते हैं, दूसरो की आंखों मे हमे उज्ज्वल वनाते हैं। छिद्रों से हमें क्या मतलव ?

क्या हमारे अपने छिद्र कम हैं जो हमे दूसरों के छिद्रान्वेषण की आवश्यकता है? एक पुरानी कहावत है कि मनुष्य के गले में दो थैलियाँ लटकी रहती है। एक मे उसके गुण रहते हैं और दूसरी मे उसके दोष। हमारा प्रयत्न ऐसा होना चाहिए कि हमारे दोषों की थैली हमारे सामने रहे और हमारे गुणों की थैली हमारे पीछे। ताकि अपने दोष हम सदा अपनी आंखों से देखते रहे। और हमारे गुण दूसरों की नजरो मे

रहे। अपने छिद्र देखते रहने से उनको दूर करने की इच्छा हमारे मन मे पैदा होती है। ईश्वर हमारी इस इच्छा को पूर्ण करे। हम निर्मल, उज्ज्वल और स्वच्छ बने। हमारे हृदय की स्वच्छता जितनी बढ़ेगी उतना अधिक हम ईश्वर-प्रेम के भागी बनेगे। यही मार्ग धर्म का है। यही स्वर्ग का। यही लोक-सुख तथा परलोक-सुख का मार्ग है।

गौरव किस में है ?

गौरव सुन्दर वस्त्रों मे नही, सुन्दर भावों मे रहता है। सुन्दर भावो से भी बढ़ कर सुन्दर कर्मों मे गौरव निवास करता है। यदि तुम्हारे वस्त्र मैले हों तो तुम उन को पहर कर बाहर निकलना नहीं चाहते, इसमे तुम्हे लज्जा प्रतीत होती है। परन्तु तुम्हारे हृदय या आत्मा पर चाहे जितना मैल चढ़ा हो इसकी तुम्हे परवाह नही।

हृदय का मैल वस्त्रो के मैल से अधिक हानिकर है। वस्त्रो के छिद्र तुम्हे दूसरो के सामने लज्जित करते हैं, तो फिर आत्मा के छिद्र परमात्मा के सामने तुम्हे लज्जित क्यों नहीं करते ?

कारण सीधा है। हम वस्त्रों को आत्मा से अधिक गौरवास्पद समझते हैं, उनकी अधिक प्रतिष्ठा करते हैं। इसीलिये वस्त्रो का मैल हमे आत्मा के मैल से अधिक खटकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम समझे कि गौरव किसमे है।

卐 卐 卐

सहिष्णु प्रेम

ईश्वर का आदेश है कि हम सबसे मित्रवत् प्रेम करें। यद्यपि हम थोड़ा बहुत प्रेम दूसरो से करते हैं, परन्तु हमारा प्रेम सहिष्णु प्रेम नही। यह केवल लेन देन का प्रेम है। हमारा प्रेम दूसरों के साथ तभी तक रहता है जब तक वे उस का बदला प्रेम द्वारा चुकाते हैं। बदले मे प्रेम न पा कर हमारे प्रेम का सूत्र कट जाता है।

यह अदले बदले का प्रेम सच्चा प्रेम नही है। सच्चे प्रेम मे लेन देन के प्रेम का अभाव हो जाता है। सहिष्णु प्रेम अनादर तक को सहन कर लेता है। माता का प्रेम सहिष्णु प्रेम कहलाता है। बच्चे उसे कितना ही तंग करें, उसके प्रेम मे न्यूनता नही आती। कुटिल व्यवहार उसको घटा नहीं सकता, क्रूरता उसे मिटा नही सकती। यह सच्चा सहिष्णु प्रेम है। माता का हृदय उसमें सदैव डूबा रहता है। प्रभु इस सहिष्णु प्रेम से हमारे हृदय को भरपूर करे।

मिताहार

हम जीने के लिए खाते हैं, खाने के लिए नही जीते। यह सिद्धान्त आहार पर विचार करते समय सदा स्मरण रखना चाहिए। हमारे बहुत से रोग केवल आहार से पैदा होते है। पेट हमारे बहुत से दुःखों का कारण बनता है। तोवड़े के समान हम इसको भरते रहते हैं। थोड़े मनुष्य क्षुधा से प्रेरित हो कर खाते हैं। अधिकांश जिह्वा-लोलुप बन कर रसनेन्द्रिय की तृप्ति मे ही लगे रहते हैं।

थोड़ा खाओ, अधिक सुख पाओ। समय पर खाओ। अन्दाज से खाओ। सादा भोजन हमे अनेक रोगो से बचाता है। जिन परिवारो में विविध प्रकार के चटपटे खाने खाए जाते हैं उनमें औषधि-सेवन की भी साथ २ आवश्यकता बनी रहती है। उनमे डाक्टरो का सदा प्रवेश बना रहता है।

उतना खाओ जितना हज़म कर सको। अपनी जेब पर, अपने स्वास्थ्य पर दया करो। यदि अपने डाक्टरों की फीस प्रति-मास किसी शिक्षणालय को दान-रूप में देते रहो तो देश का कितना कल्याण होगा ! सब दानों में विद्या-दान श्रेष्ठ है।

तीक्ष्ण स्वभाव

तीक्ष्ण स्वभाव की मार तलवार की धार से भी तेज़ होती है। भाई बहन, माता पिता, तथा पति पत्नी सब के प्रति तीक्ष्ण-स्वभाव का बर्ताव छोड़ दो। मधुर भाषण द्वारा उनके हृदयो को अपनी और आकर्षित करो। मीठे स्वभाव से हम अपने निकटवर्ती बन्धुओ के जीवन मे प्रेम का संचार करते हैं। यदि तुम कटु शब्द बोलते हो तो अपने स्वभाव को बिगाड़ते हो। दूसरों के दुःख को बढ़ाते हो।

यदि तुम्हारा स्वभाव तीक्ष्ण है तो उसे दूर करने का प्रयत्न करो। अपनी रोती हुई बहन के आँसू पोंछो और उसे पुचकारो, अपने चिड़चिड़े भाई के स्वभाव को सहन करो। अपनी माता के समक्ष अपने किये का पश्चात्ताप करो। अपनी भार्य्या के हृदयोल्लास को बढ़ाओ। अपने मित्रो के सामने अपनी त्रुटियो को स्वीकार करो।

ऐसा करने पर तुम्हारा तीक्ष्ण स्वभाव जाता रहेगा। उसके स्थान मे नम्र स्वभाव की उत्पत्ति होगी। नम्र स्वभाव से न केवल तुम्हारे साथ रहने वाले अपि तु दूर रहने वाले सभी लोग प्रसन्न रहेंगे। अपने स्वभाव की मिठास चहुँ ओर फैलाओ, यही वेद तथा ईश्वर का आदेश है।

मेरा और तेरा

मेरा और तेरा कहते २ आयु बीत जावेगी। न कुछ तेरा बनेगा, न कुछ मेरा। मेरे तेरे की स्वार्थवृत्ति छोड़ दो। सब कुछ ईश्वर का है, उसी का दिया हुआ है। यदि मेरे पास अधिक है तो उसकी कृपा से। यदि तुम्हारे पास अधिक है तो भी उसी की कृपा से।

आओ हम सब मिल कर बाँट कर खाएं। यही वेदो का उपदेश है। जो दूसरो को खिलाए बिना खाता है, वह पाप खाता है। इसी शिक्षा के आधार पर यज्ञों का निर्माण किया गया था। जिन जातियों मे मिल कर रहने और वांट कर खाने की रीति प्रचलित है, वे जातियाँ सदा सुखी रहती हैं। जीवन-सुख की यही सीधी लकीर है। इस लकीर पर चलने ही से समाज-सुख की वृद्धि होती है।

जब तुम खाना खाने बैठो तो चहुँ ओर दृष्टिपात करो। देखो, कोई भूखभरी दृष्टि से तुम्हारी ओर देख तो नहीं रहा। यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो तो उसको भूख मिटा कर खाना खाओ। इस खाने में जो मजा आएगा वह स्वर्गीय आनन्द होगा।

मुझे मांगना नहीं आता

माँगना अच्छा गुण नही है। बिन मांगे मोती मिले मांगे मिले न भीख। अपनों से भी मांग कर लेना मैं बुरा समझता हूं। जब मैं छोटा बच्चा था और मेरे घर में वृद्ध जन बच्चो को चीजें बांटते थे तो मै आँख बचाकर इधर उधर हो जाता था। केवल इसलिए कि उस चीज़ को लेने के लिए मुझे स्वयं हाथ पसारना न पड़े, अपि तु वे बुला कर मुझे देवे। इस आदत से मुझे भारी लाभ हुआ है।

यदि लेना भी हो तो शान से लेना सीखो। लेने के लिए हाथ पसारना, रोना धोना तथा गिड़गिड़ाना, ये सब बाते निन्दनीय हैं। जब मैं किसी बच्चे को ऐसा करते देखता हूँ तो मुझे उस पर दया आती है। मैं यही कहता हूँ कि उसके माता पिता का ध्यान इस ओर नहीं गया अन्यथा वे इस दासवृत्ति को उसमे न आने देते।
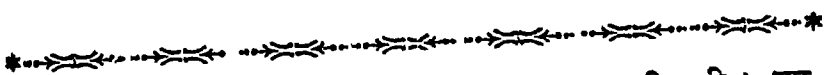
मांगने की कुप्रवृत्ति इस देश में बढ़ती जा रही थी। यह भिखमंगों का अखाड़ा बन रहा था। ऋषि दयानन्द तथा महात्मा गान्धी जी ने इस देश को भिखमंगी नीति से हटाया है। शान से रहना, लेना और मांगना सिखाया है।

क्षमा करना सीखो

अपराध किससे नही होते ? मनुष्य भूल चूक का पुतला है। पग पग पर हम भूले करते हैं। यदि अपनी भूलो के लिए तुम क्षमा चाहते हो तो दूसरों से भूल हो जाने पर क्षमा क्यो नहीं करते ?

हमप्रति दिन ईश्वर से प्रार्थना करते है कि हे प्रभो! भूलो के कारण हमें अपने से दूर न हटाओ, तो हम भूल करने वालों को अपने से दूर क्यो हटाएं ? अपराधी के कर्म से घृणा करो, परन्तु अपराधी को गले लगाने मे सङ्कोच मत करो । अपने अगाध प्रेम के बल से उसे अपराध के पञ्जे से छुड़ाओ।

क्षमा धर्म का मूल है। क्षमा पुण्य का मार्ग है। क्षमा अत्यन्त सुन्दर भाव है। क्षमा दुःखी दिलो की औषधि है। क्षमा करना सीखो।

प्रेम-परीक्षण

प्रेम की परीक्षा कब होती है ? जब संकट आ पड़े। प्रेम का धर्म देना है। दिल खोल कर देना, निःस्वार्थ भाव से देना, ऐसा देना जिस देने में लेने का नाम न हो। इस देने का अवसर तभी आता है जब संकट सिर पर आ पड़ता है। संकट आने पर ही हमें प्रेमियों के प्रेम का परिचय मिलता है।

जो लोग इस समय तुम्हारे चहुँ ओर जमघट लगाए बैठे हैं, जो मित्र २ कह कर तुम्हें पुकारते हैं, जिनको यदि तुम सहायता की अंगुली पकड़ाओ तो सारा हाथ खींचने को तैय्यार हैं, ऐसे प्रेमियो की परीक्षा दुःख के समय लो। देखो उस समय वे तुम्हारे कितने निकट आते हैं। सुख के यार तो सभी हैं, दुःख में विरले ही साथ देते हैं।

जब तुम दूसरो के प्रेम की परीक्षा करते हो तो अपने प्रेम की परीक्षा भी लिया करो। जब दूसरों के दुःखो मे तुम सहायक नहीं होते तो अपने दुःख मे दूसरो की सहायता की आशा क्यों करते हो ? जैसा करोगे वैसा भरोगे। दूसरों से प्रेम करना सीखो तब दूसरे तुम्हारे साथ प्रेम करेंगे।

ईश्वर से प्रेम की भिक्षा मांगो। वह प्रेम का अखुट भण्डार है। यह संसार उसके असीम प्रेम का विस्तार है। प्रभु के प्रेम का परीक्षण पल पल मे हो रहा है। प्रभु-प्रेम का अनुकरण करो।

संसार में शासन बहुत है

दूसरों को नियन्त्रण मे रखने के लिए शासन बहुत अच्छा साधन है, परन्तु लोग शासन की अधिकता से दुःखी हो रहे हैं। जो वस्तु अपनी सीमा को उल्लङ्घन कर जाती है, वह दुःख का कारण बन जाती है। अतः शासन कम करो। उसकी अधिकता न होने दो। जिस गृह मे बच्चों के ऊपर माता पिता का अधिक शासन होता है उसमे बच्चों का नैसर्गिक विकास नहीं होने पाता। शिष्यो पर अध्यापको का शासन भी यदि उचित सीमा से बढ़ जाय तो हानिकारक होता है। शिष्यों की मौलिकता जाती रहती है।

शासन की न्यूनता से उतनी हानि नहीं होती जितनी कि उसकी अधिकता से। शासन वस्तुतः बाह्य दबाव की सूचना देता है। इसमे क्रूरता के अंश का अन्देशा रहता है। दबाव डाल कर

दूसरों को अपने अधीन करना बुरा है। परन्तु दब कर दूसरों के अधीन हो जाना उससे भी बुरा है। न किसी से दबो, न किसी को दबाओ।

सब से प्रेम का सम्बन्ध जोड़ो। प्रेम का शासन उच्च कोटि का शासन समझो। इस शासन में शासक तथा शासित दोनों का भला है।

पछताना ठीक नहीं

पछताना पीछे से तपने का नाम है। यह व्यर्थ शोक का सूचक है। पछताने से कोई लाभ नहीं होता, प्रत्युत हानि होती है। इसमें एक तो समय का नाश दूसरे शक्ति का ह्रास होता है। लाभ तो इसलिए नहीं होता कि जो समय हम पछताने में लगाते हैं वही किसी अच्छे कार्य्य में लगाया जा सकता था। हानि इसलिए होती है कि पछतावे में हम अपने हृदय को क्षीण कर देते हैं।

जिस बात का तुम्हें पछतावा हो रहा है यदि उसका लौट आना सम्भव है तो उसके लिए प्रयत्न करो। उस दशा में पछतावा व्यर्थ है। यदि उसका लौट आना सम्भव नहीं तो सन्तोष करो। उस दशा में भी पछतावा व्यर्थ है। पछताने के स्थान में पुनः कर्म करने के लिए कमरबस्ता हो जाओ। कर्म का संकल्प हृदय में आशा की झलक पैदा करता है। आशा से उत्साह पैदा होता है। उत्साह सफलता की कुंजी है।

❋ ❋ ❋

पीछे याद आने से क्या लाभ !

प्रायः हम समय से पीछे रहते हैं। समय पर काम करने की आदत इस देश मे बहुत कम पाई जाती है। जिसे देखो यही शिकायत करता है "ओह! मै भूल गया, अच्छा अब कर देता हूँ" ऐसा कहने वाला यह नहीं समझता कि अब के करने मे और तब के करने मे बड़ा अन्तर रहता है। जो कार्य जिस समय करणीय होता है उसी समय उसकी शोभा होती है। बाद के करने मे उसका गौरव जाता रहता है। विवाहोत्सव के पीछे बाजो गाजों का क्या अर्थ ?

अतः याद रखो समय चूक जाने से करणीय कार्य्य आदरणीय नहीं होता समय चूकने का फल पछताना होता है। समय-पालन का फल मनोरथ की सिद्धि। अतः समय को सदा ध्यान में रखो। समय ही हमारा मूल-धन है। समय ही जीवन है।

"अब पछताए क्या होत जब चिड़ियां चुग गईं खेत" यह कहावत अपने विषय में कभी किसी को न कहने दो। जीवन के खेत की चिड़ियो से रक्षा करो। सर्वदा सावधान रह कर अपने जीवन के पल २ को अच्छे कर्मों में लगाए रखो। और सर्वदा याद रखो कि पीछे याद आने से कोई लाभ न होगा।

प्रेम और सेवा

प्रेम और सेवा का अटूट सम्बन्ध है। प्रेम सेवा का स्रोत है। सच्ची सेवा प्रेम-भाव के बिना नहीं हो सकती। माता और पत्नी की सेवा जगत-प्रसिद्ध है। उनकी सेवा के अगाध रूप को कौन नहीं जानता ? परन्तु उनकी सेवा उनके सच्चे प्रेम का ही फल स्वरूप होती है।

जब हृदय प्रेम से शून्य हो, जब उसकी तन्त्री प्रेमोल्लास से न बजती हो, तो सेवा किसको सूझती है ? प्रेम का ज्वार-भाटा जब आता है तो सेवा रूपी नदी में बाढ़ आ जाती है। प्रेम और सेवा के परस्पर सम्बन्ध को समझो यह दोनों भाव इकट्ठे रहते हैं दोनों के उपार्जन का प्रयास करो। तुम्हारे घर में ही उनकी प्राप्ति का अवसर और क्षेत्र उपस्थित है। अपने भाई बहिन, माता पिता और बन्धुवर्ग से बढ़ कर तुम्हारे प्रेम और सेवा के भाजन और कौन हो सकते हैं ?

❀ ❀ ❀

ईश्वर हमारे लिये क्या सोचते हैं ?

जिस प्रभु ने हमें आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियां देकर इस संसार में भेजा है, वह अवश्य हमारा भला चाहते हैं। प्रभु की हमारे लिए सब से बड़ी आज्ञा यह है कि हम अपनी जीवन-यात्रा को भली प्रकार समाप्त करें। शैथिल्य से दूर रहें। अपने जीवन की सफलता के लिए प्रयत्न करें।

हमारा इस जगह में आने का अवश्य कोई प्रयोजन है, जिसे परमात्मा ने हमारी हितचिन्ता की दृष्टि से नियत किया है, उस प्रयोजन की सिद्धि हमारा परम धर्म है। जब हम उस ईश्वरीय प्रयोजन का चिन्तन छोड़ देते हैं। तो अपने जीवन को निकम्मा, व्यर्थ और अनुपयोगी बना लेते हैं।

हम सब ईश्वर के "इकलोते" बेटे हैं उसकी दृष्टि में कोई

भेद भाव नही। सब समान रूप में उसके प्रेमपात्र हैं। वह सदैव हमारा हितचिन्तन करते हैं। हम चाहे उनको भूल जावें परन्तु वे हमें नहीं भूलते। आओ, इसी आशा और विश्वास मे जियें।

आत्मिक क्षुधा

शरीर की क्षुधा भोजन से निवृत होती है । आत्मा की क्षुधा धर्म्माचरण से । जब हमें भूख लगती है तो भोजन मांगते हैं । जब प्यास सताती है तो पानी की इच्छा प्रकट करते हैं । परन्तु आत्मा की क्षुधा मिटाने के लिए हमें कोई उपाय नहीं सूझता ।

यदि तुम आत्मिक क्षुधा अनुभव करते हो तो सदाचार के मार्ग का अवलम्बन करो । उस मार्ग पर चलने ही का नाम धर्म्माचरण है । उसी मार्ग पर तुम्हें सत्सङ्गी मिलेंगे जो तुम्हारी आत्मिक क्षुधा को दूर करेंगे । तुम्हारी भावनाओं को पूर्ण करेंगे ।

जिस प्रकार शारीरिक क्षुधा के बढ़ने से शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ता है, उसी प्रकार आत्मिक क्षुधा के बढ़ने से अत्मिक स्वास्थ्य भी बढ़ता है । धन्य हैं वे लोग जिनकी आत्माएं वलिष्ठ हैं, जिनको शारीरिक भोजन के साथ २

आत्मिक भोजन भी मिलता रहता है। सच्चा सुख संसार में ऐसे मनुष्यों को ही प्राप्त होता है।

जो खा गए सो खो गए। जो दे गए सो ले गए॥

भोग और त्याग का कैसा सुन्दर चित्र इस कहावत में खींचा गया है, जो कुछ हम खाने पीने और पहरने पर व्यय करते चले जाते हैं, वास्तव में वह सब धन हम खोते चले जा रहे हैं। वह धन-राशि हमसे छिनती जा रही है, परन्तु वह धन जो हम दूसरों के कष्टों को दूर करने के लिए अपने हाथों देते हैं वह हमारी परमार्थ-राशि में संचय हो रहा है।

परोपकारार्थ देने से जब तुम भूखे की भूख को दूर करते हो या प्यासे की प्यास को बुझाते हो तो तुरन्त तुम्हारी आत्मा अन्दर से साक्षी देती है। धीमी आवाज़ से कहती है कि वह धन तुम दे नहीं रहे अपि तु ले रहे हो, खो नहीं रहे अपि तु संचय कर रहे हो।

देते समय उदारता-पूर्वक दो। झिझक को छोड़ कर दो। निःसंकोच देना सीखो। यह तभी हो सकेगा जब तुम्हे परोपकार मे विश्वास हो। जब तुम्हें ईश्वर मे पूरी श्रद्धा हो। परमात्मा हमारे दिये हुए को नष्ट नहीं होने देते। हमारे जन्म और कर्म फल मे उसकी गिनती होती रहती है।

दुःख के पीछे देखो

जब दुःख के मेघ गरजते हैं तो हमारे हृदय हिल जाते हैं। हमारी आशायें ढीली पड़ जाती हैं। हम इतने भयभीत हो जाते हैं कि हमें कुछ दीखता नहीं, हमें कुछ सूझता नहीं।

उस समय हमें स्मरण रखना चाहिए कि दुःख रूपी मेघों के पीछे सुखरूपी सूर्य चमक रहा है, जो समय पर इन मेघों को छिन्न भिन्न कर देगा और उज्ज्वल स्वरूप में हमारे सामने प्रकाशित हो जावेगा।

शोक की नदी के पार सुख की खेती लहलहा रही है। उस का आनन्द तभी अनुभव हो सकता है जब हम इस नदी को पार कर लेवें। जब परीक्षा की घड़ी हमारे सिर पर खड़ी हो उस समय धैर्य्य से ही काम चलेगा, घबराने से कुछ न बनेगा। हमारी निराशा प्रभु की आशा का अवसर उत्पन्न करती है।

हमारी हानि हमारे लाभ मे परिणत होजाती है जब हम धैर्य्य-पूर्वक उस का सामना करते हैं। आर्य्यों के जीवन मे घबराहट का क्या काम? जिस दुःख में हमें प्रभु चरणन की याद आये वह दुःख शिरोधार्य्य है। जिस सुख में हम ईश्वर को भूल जाएं वह सुख त्याज्य है।

सुख के सिर पर सिल पड़े जो तुझ को विसराय,
वलिहारी उस दुःख के जो तव चरणन मे लाय।

बहिरा बनने का समय

बहिरे न होते हुए भी हमें कभी २ बहिरा बन जाना चाहिये, जब कोई दूषित कलुषित शब्द बोल रहा हो, जब कोई निन्दा चुगली या लोकापवाद कर रहा हो तो उस समय जान बूझ कर बहिरे बन जाओ। जिस तरह तुम्हारी आंखें प्रतिकूल पदार्थ के निकट आने पर बन्द हो जाती हैं उसी तरह तुम्हारे कान भी न सुनने योग्य शब्दों को पाकर बन्द हो जाने चाहिएं। वेद कहता है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः।

हे परमात्मन्! हम सदा अपने कानो से भद्र-वाणी सुने और अपनी आंखों से कल्याणकारी चीजों को देखें, कानो का दुष्प्रयोग हमें कदापि न करना चाहिए। चुगली खाने वाले को तुम अपनी चेष्टा से प्रकट कर दो कि उसका व्यवहार तुम पसन्द नहीं करते। यदि तुम अपने कान उस के अर्पण

कर देते हो तो उसकी बुरी आदत की ज़िम्मेदारी अपने सिर लेते हो।

शिष्टाचार यही है कि धैर्य्य-पूर्वक दूसरों की बातें सुनो परन्तु सुनो वही जो तुम्हें सुनना चाहिए। अन्यथा कानों के द्वार बन्द कर लो और बधिर बन जाओ।

वैयक्तिक प्रभाव

मनुष्य शक्तियों का भण्डार है वह शक्तियो का केन्द्र है। उस का प्रभाव चहुँ ओर फैलता है। उसके इर्द गिर्द रहने वाले उसके प्रभाव से प्रभावित होते है। यदि हमारा जीवन उच्च तथा चरित्र उन्नत है तो उस का प्रभाव दूसरो के लिये वरकत का काम देता है। यदि इसके विपरीत हो तो हम अपने प्रभाव से दूसरों को हानि पहुँचाते हैं।

सदा इस प्रकार यत्न करते रहो कि तुम्हारे प्रभाव से दूसरों को लाभ पहुँचे। जो लोग अपने प्रभाव से दूसरो को सन्मार्ग से हटा कर पथ-च्युत कर देते हैं, वे पाप के भागी वनते हैं। आओ हम विचारे कि हमारे जीवन का प्रभाव दूसरों के आकर्षण का साधन कैसे वन सकता है ?

यदि हम कर्तव्य-पालन मे तत्पर रहे, अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझे, अपने मन वचन और वाणी को

सदैव धर्म्मानुकूल बनावें तो हमारा वैयक्तिक जीवन उत्तम प्रभाव पैदा करने वाला होगा। अपने सहवासी, निकट-वर्ती सज्जनों को हम अपने चरित्र के रंग में रंग देंगे। परमात्मा हमें ऐसा प्रभाव प्रदान करें जो सब के लिए कल्याणकारी हो।

दुःख का वास्तविक व्यापार

दुःख का वास्तविक व्यापार न समझ कर ही हम उससे घबराते हैं, भागते हैं और शिकवा शिकायत करते हैं, घबराने, भागने और शिकायत करने से हमारा दुःख दूर नहीं होता अपि तु बढ़ता है। दुःख के रहस्य को समझने का यत्न करना चाहिए

दुःख वस्तुतः सुख का पूर्ववर्ती होता है। दुःख के बाद सुख आता है, ऐसा प्रकृति का नियम प्रतीत होता है। अतः दुःख के उपस्थित हो जाने पर उसे प्रसन्नता-पूर्वक सहन करना चाहिए। हंस २ कर उसे टाल देने का प्रयत्न करना चाहिए। रोने धोने और चिल्लाने को बन्द कर के उस पाठ की ओर ध्यान देना चाहिए जो दुःख की घटना हमें सिखाती है। प्रत्येक दुःख ईश्वर की ओर से कोई न कोई सन्देश लाता है। उस सन्देश को ध्यान-पूर्वक सुनो। प्रत्येक दुःख हमारी आँखों के

सामने से अज्ञान के आवरण को दूर करता है और वस्तु-स्थिति का हमे बोध कराता है।

जब हम दुःख से दुःखी होते हैं तभी सुख के वास्तविक मूल्य को समझते हैं। सुख की कदर दुःख मे ही मालूम होती है। दुःख की भट्ठी में पड़ कर मनुष्य कुन्दन बन जाता है। उसका चरित्र चमकने लगता है। उसके जीवन की शोभा और आभा बढ़ती है। दुःख हमे ईश्वर के निकट पहुँचाता है। हमारे गर्व को चकनाचूर कर देता है। हमारे भीतर नम्रता का संचार करता है। दूसरे मनुष्यो के साथ सहानुभूति तथा प्रेम करना सिखाता है। यही दुःख का वास्तविक व्यापार है।

मीठे संस्मरण

आज हम कल के लिए संस्मरणों का सञ्चय कर रहे हैं। हमारे वर्तमान अनुभव भविष्य मे हमारे संस्मरण वन जाते हैं। अच्छे कर्म, मीठे संस्मरण पैदा करते हैं और दुष्कर्म, दुःख दायक संस्मरण। आज, यदि हम एकान्त मे वैठ कर अपनी वाल्यावस्था का चिन्तन करे तो हमें उस काल के अच्छे, वुरे संस्मरण हमारी आँखों के सामने मूर्तरूप में दिखाई देंगे, और हमारे सुख, दुःख का साधन बनेंगे।

यदि यह वात सत्य है कि अच्छे या वुरे संस्मरण हमारे सुख, दुःख का कारण वनते हैं तो हमें सावधान हो कर अपनी वृद्धावस्था के लिए अभी से मीठे संस्मरणों के संचय का मार्ग अवलम्वन करना चाहिए। अपनी युवावस्था को इस प्रकार व्यतीत करो कि वृद्धावस्था मे सिवाय मीठे संस्मरणों के तुम्हें अन्य किसी वात की स्मृति न होने पावे।

वृद्धावस्था में जब तुम अपने भूतकाल का चिन्तन करो तो तुम्हारी आँखों के सामने सुख का भण्डार खुल जाना चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम अभी से सावधान होकर मृदु, सुन्दर तथा मधुर व्यवहार करना प्रारम्भ कर दें। अपने भाई, बहिन माता, पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के प्रति ऐसा सुखप्रद व्यवहार करें जो भविष्य में मीठे संस्मरण पैदा करने वाले हों

अनुकरण

अनुकरण मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। आयु की प्रत्येक अवस्था मे हम किसी न किसी बात का अनुकरण करते रहते हैं, परन्तु अनुकरण सदैव उत्तम बातों का का होना चाहिए। बुरी बातों के अनुकरण से मनुष्य अधोगति को प्राप्त होता है।

यदि देवताओं का अनुकरण करोगे तो देवता बन जाओगे। राक्षसों के अनुकरण से राक्षस। अनुकरण द्विमुखी तलवार है यह मनुष्य के सुधार अथवा बिगाड़ दोनों मे काम आती है।

अपने चहुँ ओर रहने वाले व्यक्तियों के बुरे गुणों का अनुकरण कदापि न करो, केवल उनके शिष्ट गुणों को अपनाओ। इसीमें तुम्हारा भला है। यदि तुम्हे अभिमानी से वास्ता पड़ा है तो तुम उसके अभिमान का अनुकरण न कर के उसके स्थान में नम्रता को धारण करो। अनुकरण उन्हीं बातों

का होना चाहिए जो सुख की वृद्धि करने वाली हों। यदि तुम्हारा साथी उत्तम और मूल्यवान वस्त्रों को खरीद सकता है तो उसे मुबारक हो। परन्तु यदि तुम सामर्थ्य न रखते हुए उसका अनुकरण करोगे तो अपने लिए दुःख मोल लोगे। बच्चों की अनुकरण-शक्ति पर उचित अनुचित का प्रतिबन्ध सदा लगाते रहो। अनुकरण-शक्ति तभी कल्याणकारी होगी।

विवेक

हिताहित, लाभालाभ, भले बुरे की पहिचान कराने वाली शक्ति का नाम विवेक है। जो मनुष्य विवेक शक्ति से काम लेता है उसका सदा कल्याण होता है। विवेक-शून्य मनुष्य जीवन मे सदा ठोकरें खाता है।

धर्म्म के स्वरूप का ज्ञान भी विवेक द्वारा उत्पन्न होता है। जो विवेक-शक्ति से काम लेते हैं वे उत्तरोत्तर उन्नति को प्राप्त होते चले जाते हैं। विपरीत इसके जो विवेक शक्ति को ठुकराते हैं और मनमानी करते हैं, वे अधोगति को प्राप्त होते हैं।

यदि सच पूछो तो विवेक द्वारा ही मनुष्य का पशु से भेद होता है। मननशीलता मे ही हमारा मनुष्यत्व रहता है। गृहस्था-गृहस्थियों को विवेक की प्रचुर आवश्यकता रहती है।

श्रम का सारा सुख इसी पर अवलम्बित रहता है। जिस गृह मे विवेक का राज्य नहीं, वहाँ सुख का राज्य भी नही हो सकता। बाल बच्चों को घर में ही विवेक की शिक्षा मिलनी चाहिए। विवेक-सम्पन्न माता पिता धन्य हैं!

तेरी इच्छा पूर्ण हो

ऋषि दयानन्द जब मृत्यु-शय्या पर थे तो उनके मुख से बार २ यह शब्द निकले "हे प्रभो! तेरी इच्छा पूर्ण हो।" ईसा मसीह ने सूली पर चढ़ कर यही शब्द उच्चारण किये थे। बहुत से लोग इसका यह तात्पर्य्य समझते हैं कि यह शब्द मृत्यु के समीप पहुँचने पर ही बोले जाते हैं। वस्तुतः यह बात ठीक नहीं। महात्मा लोग क्षण क्षण पल पल में प्रभु की इच्छा पूर्ण करते हैं। दयानन्द तथा ईसा ने अपना सारा जीवन ईश्वरेच्छा की पूर्ति में लगा दिया था। जो शब्द उन्होंने मृत्यु के समीप अपनी ज़बान से उच्चारण किये वही शब्द वे आयु-भर अपने चरित्र से उच्चारण करते रहे।

अपने प्रत्येक कार्य्य में, प्रत्येक कर्तव्य में ईश्वरेच्छा को पूर्ण करते जाओ। अपनी इच्छा को ईश्वर की इच्छा का प्रति-रूप बनाओ तभी यह कहने के अधिकारी बनोगे कि "हे प्रभो! तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

जब हम अपने सांसारिक इष्ट मित्रों की इच्छाओं को पूर्ण करने मे प्रसन्नता प्राप्त करते हैं तो उस परम इष्ट, परम मित्र परमात्मा की इच्छा पूर्ण करने मे हमे कितनी प्रसन्नता प्राप्त होगी !

प्रलोभनों पर विजय

प्रायः लोग प्रलोभनों के सन्मुख भयभीत हो कर भागते हैं, उनसे दूर रह कर निश्चिन्त रहना चाहते हैं। यह धर्म्म का मार्ग नहीं, कायरता का मार्ग है। धर्म्म संघर्षण सिखाता है। संग्राममय जीवन व्यतीत करने की आज्ञा देता है।

प्रलोभनों से भागने की अपेक्षा उन पर विजय प्राप्त करने का यत्न करो। ऐसे बलवान बनो कि प्रलोभन तुम्हारे समीप आने ही न पावे। जीवन का कोई सुख बिना प्रयत्न प्राप्त नहीं होता। यदि तुम उत्कृष्ट चरित्र बनाना चाहते हो तो बिना प्रलोभनों के साथ संग्राम किये तुम्हें चरित्र प्राप्त न होगा।

प्रलोभनों की खाई पार करने पर ही सुख प्राप्त होता है। जीवन की सुख रूपी, सुन्दर भूमि को पहुँचने के लिए
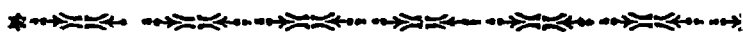
प्रलोभनों की नदी पार करनी पड़ेगी। जब तुम प्रलोभनों को जीत लोगे तो सुख के द्वार तुम्हारे सन्मुख खुल जावेंगे। धन्य हैं वे जो प्रलोभनों को पाओं तले रोद कर दूसरों को शूरता का मार्ग दिखाते हैं। सफलता ऐसे ही व्यक्तियों का स्वागत करती है।

सौन्दर्य्य

सौन्दर्य्य किस को नहीं भाता ? सुन्दर प्राकृति को देख कर सभी प्रसन्न होते हैं । सौन्दर्य्य के साथ सभी का अनुराग रहता है। सौन्दर्य्य का आकर्षण प्रत्येक हृदय अनुभव करता है । सौन्दर्य्य स्वयं ईश्वर का स्वरूप है ।

भक्त लोग ईश्वर को सौन्दर्य्य में देखते हैं। तार्किक उस को सत्य मे चिन्तन करते हैं। सुन्दर फूल को देख कर कवियों की कल्पना जागृत हो जाती है। साधारण मनुष्यों को भी सौन्दर्य्य के अनुभव से रोमाञ्च हो उठता है। सभी मनुष्य सुन्दर पदार्थ की समीपता चाहते हैं उसे ग्रहण कर लेने की इच्छा प्रकट करते हैं।

सौन्दर्य्य के साथ निकृष्ट भावों का जोड़ कभी न होने दो । जिन लोगों को सौन्दर्य्य मे नीच भाव भासने

लगते हैं वे सौन्दर्य्य के महत्त्व को भूल कर उसे अपनी नीच वासनाओ की तृप्ति का साधन बना लेते हैं। सौन्दर्य्य ऐसे व्यक्तियो को स्वर्ग से हटा कर नरक की ओर धकेलता है।

सौन्दर्य्य और आडम्बर

सौन्दर्य्य और आडम्बर मे प्रायः भेद नहीं किया जाता। सौन्दर्य्य स्वाभाविकता मे रहता है, आडम्बर कृत्रिमता में। शरीर को जेवरो से लथपथ कर लेने से केवल वाह्याडम्बर वढ़ता है, सौन्दर्य्य नहीं वढ़ता। आडम्बर को सौन्दर्य्य समझ कर जो लोग अपना रुपया उसकी वृद्धि में लगाते हैं वे व्यर्थ धन का व्यय करते हैं। जो युवक अथवा युवतियां आभूषणो, वस्त्रों या कृत्रिम हाव भाव मे सौन्दर्य्य ढूंढती हैं वे सौन्दर्य्य के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझतीं।

फूल का सौन्दर्य्य, सूर्योदय अथवा सूर्य्यास्त का सौन्दर्य्य, पर्वत अथवा समुद्र का सौन्दर्य्य स्वयं भासता है। उसे किसी कृत्रिम साधन की आवश्यकता नही होती। उस का विकास अथवा प्रकाश अपने आप होता है।
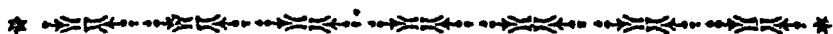
शरीर का सौन्दर्य्य स्वास्थ्य मे रहता है, आत्मा का चरित्र मे। शरीर का लावण्य उसकी सरलता और स्वाभाविकता से टपकता है। रंगीले और चमकीले वस्त्र उस को छिपाते हैं, दिखाते नहीं। सौन्दर्य्य और आडम्बर का भेद समझो। एक को दूसरे का स्थान न लेने दो।

छोटी सेवा

संसार मे वड़ी वड़ो सेवा सब करना चाहते हैं, परन्तु छोटी सेवा करने से घवराते हैं। वड़ी सेवा में वे नाम समझते हैं, छोटी सेवा अज्ञात रूप से करनी पड़ती है। इस में वाह वा नहीं मिलती। छोटी सेवा पर तालो नहीं पिटती, इसी लिये इसकी ओर हमारा झुकाव नहीं होता।

परन्तु प्रकृति का नियम विचित्र है। वड़ी सेवा करने के योग्य मनुष्य वनता ही तव है जव छोटी छोटी सेवा वह कर चुकता है। वच्चा चलता है, जव खड़ा होना सीख लेता है। दौड़ता है, जव चलना सीख जाता है। उन्नति का नियम क्रमशः वृद्धि है।

यदि तुम वच्चे को चलना सीखने से पूर्व दौड़ने की आज्ञा दोगे तो वह मुंह के वल गिरेगा। इसी नियम के अनुसार पहले छोटी छोटी सेवा करना सीखो, तभी तुम वड़ी सेवा के अधिकारी वनोगे।

कैसे निभेगी ?

तुम कहती हो मेरे पति का स्वभाव तीक्ष्ण है, मेरी उस के साथ कैसे बनेगी ? तुम कहते हो मेरी पत्नी का स्वभाव कटु है, मेरी उस के साथ कैसे निभेगी ? प्रश्न बनने का नहीं, बनाने का है। निभने का नहीं, निभाने का है। चाहे बने चाहे न बने, तुम्हे बनानी पड़ेगी। चाहे निभे चाहे न निभे, तुम्हें निभानी पड़ेगी।

सर्वांश में अनुकूलता संसार मे नहीं मिलती। और मिले भी कैसे ? अनुकूलता उत्पन्न करने मे ही हमारे जीवन का गौरव है। प्रकृति की बहुत सी घटनाएं हमें प्रतिकूल दिखाई देती हैं। पग पग पर हमारा उनके साथ विरोध हो रहा है। हमारा पुरुषत्व इसी में है कि प्रकृति को हम अपने अनुकूल बनावें। उसे अपनी दासता में लावें।

यदि सारा जीवन ही संघर्षमय है तो गृहस्थ की छोटी

छोटी प्रतिकूल अवस्थाओं का कहना ही क्या ? उनसे हतोत्साह होने की आवश्यकता नहीं। नीति और प्रीति से सब कुछ सिद्ध किया जा सकता है। धैर्य्य धर्म्म है। उसका फल मीठा है। यदि धैर्य्य न छोड़ोगे तो तुम्हे यह कहने की आवश्यकता न होगी कि कैसे बनेगी।

अभ्यास और विचार

बहुत से मनुष्य सदा अच्छा सोचते हैं, परन्तु बुरा करते हैं। अच्छा सोचने से क्या लाभ ? जब उस का फल अच्छा कर्म न हो। बात यह है कि करना न करना हमारे अभ्यासो (आदतो) पर निर्भर होता है। जब तक हम उत्तम विचारों को उत्तम कर्मों मे परिणत नहीं करते तब तक हमारे अभ्यास नही बनते। जब अभ्यास बन जाते हैं तो जीवन की बागडोर उन्ही के हाथ रहती है।

केवल उत्तम विचारो से काम नहीं चलता। उत्तम कर्मों की जरूरत बनी रहती है। अपने अभ्यास ऐसे बनाओ कि तुम्हारे उत्तम विचार सदा उत्तम कर्मों का रूप धारण करते रहे। विचार और आचार की संगति होना जरूरी है। जब तक मेरे कहने और करने मे एकता नही तब तक लोग मुझ पर विश्वास नहीं करेगे। अपने मन्तव्य और कर्तव्य का विवाह रचाओ। उत्तम फल उत्पन्न होगे जिनको देख जगत रीझेगा।

सूर्यास्त होने से पूर्व

सूर्यास्त होने से पूर्व हमें बहुत कुछ कर लेना चाहिए। अपनी की हुई प्रतिज्ञाएं तथा अपने प्रारम्भ किये कर्तव्यों को पालन कर लो। यदि कोई सेवा का कार्य हाथ में लिया है तो उसको भी निश्चित अवधि तक पहुँचा लो।

यदि तुमने किसी का दिल दुःखाया है या किसी को मनसा, वाचा, कर्मणा पीड़ा पहुँचाई है तो सूर्यास्त से पूर्व अपने अपराध के लिये उससे क्षमा मांग लो। पश्चात्ताप मे देरी न होनी चाहिये। समय किसी की प्रतिज्ञा नही करता। हम उसकी प्रतीक्षा क्यों करें ?

यदि तुम कहो कि झगड़े का कारण कोई दूसरा व्यक्ति है और अपराध वास्तव में उसका है तो भी उचित यही है कि प्रेम का सूत्र तुम्हारे हाथों से बान्धा जाय। परस्पर विद्वेष बढ़ जाता है यदि सूर्यास्त से पूर्व तुम उसका निपटारा नहीं कर लेते।

गौरव का पात्र झगड़ा मिटाने वाला होता है न कि झगड़ा चलाने वाला। अपने झगड़ों मे रात्रि को न आने दो। उसके आने के पूर्व ही अपने हृदय का मैल धो डालो। टूटे हृदयों को जोड़ लो। तब तुम सुख चैन की नीद सो सकोगे।

ईश्वर की दृष्टि में

ईश्वर की दृष्टि में कौन बड़ा है और कौन छोटा ? संसार में सब मनुष्यों के अपने अपने गुण होते हैं जो उनका एक दूसरे से भेद करते हैं। कोई दो व्यक्ति समान उत्पन्न नहीं होते। गुण-भेद से कर्तव्य-भेद पैदा होता है अतः हम सब के अपने अपने कर्तव्य हैं, जिनका पालन हमारे लिए अनिवार्य्य है।

सृष्टि की रचना में हम सब पुर्जों के समान आवश्यक अङ्ग हैं। किसी एक पुर्जे के ढीला पड़ जाने से सारी मशीन को हानि पहुँचती है। अतः सब पुर्जों का ठीकठाक रहना मशीन की सफलता के लिये आवश्यक है।

ईश्वर की दृष्टि मे छोटे बड़े का प्रश्न ही नहीं उठता। सब मनुष्य अपने अपने स्थान पर ईश्वर-प्रदत्त शक्तियों से अपना अपना कार्य्य कर रहे हैं जो मनुष्य जाति के

सामूहिक भले के लिये होता है। जो दूसरों की स्थिति को देख कर जलते नहीं, अपि तु प्रसन्न होते हैं और अपनी स्थिति के लिए ईश्वर का धन्यवाद करते हैं वे मनुष्य धन्य हैं।

कल नहीं आज

जो करणीय है वह आज ही कर लो। उसको कल पर मत छोड़ो। "आज" सर्वदा तुम्हारे पास है, "कल" की कौन जाने। आज का कर्तव्य आज ही समाप्त कर डालो। आज तुम्हारे रोगी मित्र को तुम्हारी सेवा की आवश्यकता है। यदि आज तुम उसकी सेवा के लिये नहीं पहुँचते तो स्यात् कल वह चल बसे और तुम हाथ मल मल पछताते रह जावो।

यदि आज प्रलोभन में आए हुए किसी व्यक्ति को तुम्हारी सलाह मशवरे की आवश्यकता है तो आज ही उसके पास पहुँचो। कल सम्भवतः वह परास्त हो लज्जा की धूलि में लथ-पथ हो जावे। उस समय तुम्हारे उपदेश से उसे क्या लाभ होगा ?

सुखियों के सुख में, अथवा दुःखियों के दुःख में, आज

ही शरीक हो जावो। "आज" हाथ से न जाने पावे। "आज" ईश्वरीय कृपा का कोष है। "कल" घातक है; हज़ारों जीवन और लाखों आशाओं का बलिदान ले चुका है। अब उस "कल" का पीछा छोड़ो और "आज" के पुजारी बनो।

भावी भय

भावी भय का चिन्तन कर के अपने जीवन को दुःख-मय मत बनाओ। भावी संकटों का विचार वर्त्तमान समय के सुखों को दूर करने वाला होता है। जब तक सूर्य्य चमकता है, जब तक हमारे हाथ पाँव उसके प्रकाश मे कार्य्य कर सकते हैं, तब तक भावी भय को भुला कर हमें कार्य्य करते रहना चाहिए।

रात्रि की छाया मुझे क्यों डराती है? जब मेरे प्रभु मेरे साथ हैं, जब मेरी आत्मा उनकी इच्छा पूर्ति में तत्पर है, जब अवसर और शक्ति मेरे हाथ में है तब मुझे भावी का भय क्यों हो?

आज के उपस्थित सुखों का उपभोग करो। स्वयं आनन्द उठाओ, दूसरों को लाभ पहुँचाओ। ईश्वर में अपनी सच्ची

भक्ति और अगाध प्रेम बनाए रखो। हर प्रकार का भावी भय भाग जाएगा। जो ईश्वर को नहीं भूलते, ईश्वर उनको नहीं भूलता। सदा उन्हे अपनी छत्रच्छाया में रख कर उनके सुखों को बढ़ाता है।

हृदय-सौन्दर्य्य

तुम्हे अपने भवन के सौन्दर्य्य पर अभिमान है। तुम अपने बागीचे का वर्णन करते नहीं थकते। तुम्हे अपने वस्त्रों आभूषणों का सौन्दर्य्य दम नहीं लेने देता। तुम्हें अपने शरीर का सौन्दर्य्य जमीन पर आँखें लगाने नहीं देता, परन्तु यह सब सौन्दर्य्य हृदय-सौन्दर्य्य के सामने तुच्छ हैं।

हृदय-सौन्दर्य्य सदाचार तथा आत्मिक पवित्रता से उत्पन्न होता है। संसार मे हृदय-सौन्दर्य्य की तुलना कोई दूसरा पदार्थ नही कर सकता। हृदय हमारे जीवन का केन्द्र है। सारी शक्ति का स्रोत है।

हृदय-सौन्दर्य्य की कान्ति अलौकिक होती है। उसका अद्‌भुत प्रभाव भौतिक सौन्दर्य्य से अधिक आकर्षण रखता है। अतः सब से पूर्व हृदय-सौन्दर्य्य का सम्पादन करो। यदि सुन्दर

स्वरूप परमात्मा तुम्हारे हृदय में निवास करते हैं तो हृदय-सौन्दर्य्य अपने आप देदीप्यमान होगा। जहाँ प्रभु निवास करे वहाँ उनका सौन्दर्य्य अवश्यमेव रहता है। केवल पवित्र हृदय में पवित्र सत्ता का निवास सम्भव है। हृदय को पवित्र बनाओ तभी हृदय-सौन्दर्य्य प्राप्त होगा।

चरित्र-निर्माण

जिस प्रकार एक सुन्दर भवन निर्माण करने के लिए कारीगरों को एक २ पत्थर और ईंट बड़ी सावधानी से लगानी पड़ती है ठीक उसी प्रकार और उससे भी अधिक सावधानी से चरित्र के भवन का निर्माण होता है। चरित्र के भवन में ईंटों के स्थान पर कर्म और विचार, चूने और गारे के स्थान पर स्नेह, सहानुभूति, श्रद्धा और विश्वास आदि संयोजक शक्तियों की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार प्रत्येक कच्ची और कमजोर ईंट सारे भवन की कमजोरी का कारण बनती है इसी प्रकार प्रत्येक विचार, भाव और कर्म की कमजोरी चरित्र की शिथिलता का कारण बनती है।

चरित्र के सुन्दर भवन निर्माण करने वालों को इस उपर्युक्त सिद्धान्त का खूब मनन करना चाहिए। यदि वे अपने विचारों, भावों और कर्मों को सदैव शुद्ध, पवित्र और सुन्दर

बनाए रखेंगे तो उनके द्वारा निर्मित उनके चरित्र का सुन्दर भवन सदा सब को आकर्षित करता रहेगा। और अनेक व्यक्ति ऐसे भवन मे आश्रय पा कर सुखी और सन्तुष्ट होंगे। चरित्र के ऐसे ही सुन्दर भवन निर्माण करो।

विश्वास की न्यूनता

कई लोग निरन्तर काम मे लगे रहते हैं। चक्की के समान उनका कार्य्य-चक्र चलता रहता है। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी उन के जीवन की उपज सन्तोषजनक प्रतीत नहीं होती। वे सदा यही अनुभव करते हैं कि हम से कुछ बन नहीं पड़ता। इस का कारण उनके भीतर विश्वास की न्यूनता ही है। सब कुछ करते धरते भी यदि कुछ नहीं बन पड़ता तो उपर्युक्त कारण के सिवाय उस का दूसरा कारण क्या होसकता है ?

अपने जीवन मे विश्वास की शक्ति को बढ़ाओ। विश्वास और आशा जीवन की काया-पलट कर देते हैं। इन के कारण अन्धेरे मे भी प्रकाश दीखने लग जाता है। जहां आशा और विश्वास का परस्पर मेल हो जावे वहां जीवन की कठिनाइयां आंखों से ओझल हो जाती हैं। हृदय उत्साह से परिपूर्ण हो

जाता है। चहुँ ओर उज्ज्वल भविष्य के उज्ज्वल दृश्य दीखने लग जाते हैं। ऐसी दशा मे जीवन की उपज बढ़ जाती है। परिणाम सन्तोषजनक मालूम होते हैं। सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होने लगती है।

क्रीड़ा तथा मनोविनोद

क्रीड़ा तथा मनोविनोद बुरी चीजें नहीं। ग़म-ग़लत करने के अच्छे सामान हैं। जहाँ तक हो सके उन से लाभ उठाना चाहिए। परन्तु क्रीड़ा और मनोविनोद में सदा डूबे रहना जीवन को खो देने के बराबर है। उन में उसी सीमा तक तुम्हें प्रवृत्त होना चाहिए जहां तक वे तुम्हें अपने आर्य्यत्व से पृथक नहीं करते।

अपने आप से सदा यह प्रश्न पूछो कि जिस क्रीड़ा में तुम्हारा मन जाता है, जिस मनोविनोद में तुम्हें प्रसन्नता मिलती है, वे तुम्हारे नैतिक तथा धार्मिक जीवन में बाधक तो नहीं होरहे ? यदि ऐसा हो तो वे त्याज्य हैं। उन का बहिष्कार करना उचित है, चाहे वे निष्पाप और निर्दोष क्यों न हों। हमारे मनोविनोद हमें अधिक शिष्टाचारी, अधिक धार्मिक तथा अधिक उपयोगी बनाने वाले होने चाहिएं। यदि ऐसा नहीं हो सकता तो हमें अपने मनोविनोद के साधन बदल लेने चाहिएं।

❀ ❀ ❀

वाणी और जीवन

वाणी से जीवन अधिक प्रभावशाली होता है। वाणी की अपेक्षा जीवन अधिक उच्च स्वर से हमारे गुण दोष आलापन करता है। चरित्र से जो विजय संसार में सम्भव है वह चिकने चुपड़े भाषणों से कदापि सम्भव नहीं हो सकती। चरित्र का प्रभाव चिरस्थायी होता है। भाषण विक्षोभ, चर्चा, वादानुवाद तो उत्पन्न कर देता है परन्तु उस का प्रभाव बहुत देर तक नही रहता।

अतः अपने भाषण पर अधिक भरोसा न करो। उस की शक्ति की सीमा पहचानो। अपने जीवन का प्रभाव बढ़ाओ। उसे संसार में महान शक्ति का पुञ्ज बना कर दिखाओ। यदि तुम प्रभावशाली वक्ता हो तो याद रक्खो कि तुम्हारे सुन्दर शब्द लोग भूल जावेंगे, परन्तु तुम्हारा सुन्दर जीवन बहुत
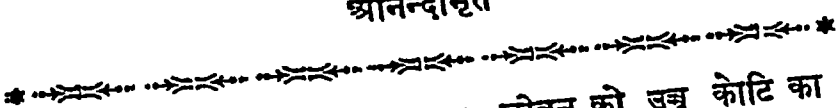
समय तक उन्हे न भूलेगा। अतः जीवन को उच्च कोटि का बनाने का प्रयत्न करो। वाणी की वीणा मधुर बजती है, परन्तु जीवन की वीणा उस से भी अधिक मधुर स्वर का आलापन करती है!

बदले का भाव

बच्चे को जब कोई गाली देता है तो वह उस के बदले में गाली देना चाहता है। जब कोई उसे पीटता है तो वह उसे बदले में पीट कर अपना क्रोध शान्त करता है। अदले का बदला यह भाव बच्चों मे स्वाभाविक पाया जाता है।

परन्तु अब हम बच्चे नहीं हैं। हमे उस स्वभाव को बदलना चाहिए। अदले का बदला चुकाना धार्मिक जीवन मे बाधा डालता है। बदला लेना धर्म्म के सर्वथा विरुद्ध है। केवल पाशविक प्रवृत्तियां ही मनुष्य को बदला लेने के लिये प्रेरित करती हैं।

धार्मिक जीवन की जीत इसमे है कि हम हमेशा के लिए पापी को परास्त कर दें और यह तभी सम्भव हो सकता है जब उस के पाप का बदला पुण्य से चुकाया जावे। जब उस

को क्षमा, प्रेम और सहिष्णुता को दृष्टि से अपनाया जावे। परमात्मा सदैव पापियों को प्रेम-प्रदर्शन द्वारा पुण्य के मार्ग पर ले जाते हैं। हमें भी उन का अनुकरण करना चाहिए।

विनय में विजय

बच्चा जब अपनी माता से कुछ प्राप्त करना चाहता है तो उसके गले लिपट जाता है। वह अपना अधिकार युक्तियों से सिद्ध नहीं करता, परन्तु अपने प्रेम-बल से माता को देने पर बाधित कर देता है। यदि इसी प्रवृत्ति को हम प्रभु की ओर प्रकट किया करें तो हमारा लेने का बल कितना बढ़ जाएगा! अपने भण्डार को भरने के लिए हम ईश्वर से सदैव याचना करते हैं, परन्तु उस याचना की पूर्ति के लिए प्रेम-पूर्ण विनय अत्यन्तावश्यक है।

विनय के बल से प्रभु बाधित हो जाते हैं। भण्डार का मुख खोल देते हैं, प्रेम-प्रेरणा से जिस प्रकार माता का हृदय द्रवित हो जाता है उसी प्रकार जगज्जननी माता की अनन्त शक्तियों का स्रोत प्रवाहित होने लगता है। विजय-प्राप्ति के लिए विनय एक अमोघ शस्त्र है। इसका प्रयोग संसारिक व्यवहार में जितना अधिक करोगे उतना अधिक विरोधी शक्तियों के प्रहार से बचोगे।

❋ ❋ ❋

प्रेम-प्रकाशक

जो दूसरों के लिए कष्ट सहन करते हैं वे ही जीवन में ऊँचे उठते हैं। ऐसा देखने में आता है कि कष्ट मनुष्य के उत्कर्ष का साधन सिद्ध होता है। कष्ट के द्वार से गुज़र कर ही हम सुख के दर्शन करते हैं, इसे ईश्वरीय नियम समझो।

यदि बालक कष्ट से पीड़ित न हो तो मातृप्रेम के विशुद्ध स्वरूप का उसे कैसे बोध हो ? ईश्वरीय प्रेम का भी प्रकाशन इसी प्रकार होता है। जितना अधिक पीड़ा हम सहन करते हैं उतना अधिक ईश्वरीय प्रेम के हम पात्र बनते हैं। हमारे दुःख और उनका धैर्य्य-पूर्वक सहन हमें ईश्वर के पवित्र प्रेम का दर्शन कराते हैं।

जिस प्रकार अन्धकारमयी रात्रि में तारों का शोभा होती है, और उनकी कान्ति हृदय को आह्लादित करती है उसी प्रकार दुःखमय जीवन में ईश्वरीय प्रेम का उज्ज्वल प्रकाश दीखता है। सच पूछो तो दुःख ही प्रेम-प्रकाशक है।

आप कुछ बोलेंगे ?

सभा, समाज और सोसायटी में "बोलने" का रोग दिनों-दिन बढ़ रहा है। जब समाज-मन्दिर में कोई नया व्यक्ति पहुँचता है तो मन्त्री महोदय तुरन्त कह उठते हैं "क्या आप कुछ बोलेंगे ?" बोलने वाला बोलने का अधिकारी है वा नहीं, इस बात की कोई चिन्ता नहीं। उसे बोलना चाहिए और दूसरों को सुनना चाहिए। यह बोलने और सुनने का चस्का चरित्र-निर्माण में बाधक सिद्ध हो रहा है। देश की स्थिति और धर्म्म की गति को ध्यान में रखते हुए यह कहना पड़ता है कि अब बोलने और सुनने का समय नहीं। अब करने धरने का समय है। आचार-प्रधान देशों में लोग बोलने और सुनने की अपेक्षा कार्य्य-क्षेत्र में अधिक प्रवृत्त होते हैं।

धर्म्म की पिपासा भी तभी तृप्त होती है जब हम जिज्ञासा को छोड़ कर कर्तव्य-पालन में प्रवृत्त होते हैं। धर्म्म का ज्ञान इतना

श्रेयस्कर नहीं, जितना उसका आचरण। यदि तुम पण्डित हो तो धर्म्म के प्रश्नों को सुलझा सकते हो। उनका स्पष्टीकरण कर सकते हो। धर्म्म धारण करने का नाम है। अपनी जबान पर ताला लगाओ। कानों को बन्द कर लो, अपनी शक्तियों को चरित्र-निर्माण में लगा दो। जब "बोलना" बन्द करोगे तब "करने" का युग आरम्भ होगा।

प्रवचन

शास्त्रों ने कहा है कि भगवान प्रवचन से प्राप्त नही होते। "न प्रवचनेन लभ्यः"। तर्क से, विवाद से, प्रलाप से वे प्राप्त नहीं होते। आत्मा क्या है ? परमात्मा क्या है ? मुक्ति में जीव की क्या गति और स्थिति होती है ? इत्यादि जटिल प्रश्न बड़े गहरे विचार की अपेक्षा रखते हैं। बड़े-बड़े दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा तत्ववेत्ता इनके हल करने में अपना बहुमूल्य जीवन बलिदान कर चुके हैं, परन्तु हम मे से प्रत्येक व्यक्ति के लिये वे प्रश्न अब भी वैसे ही जटिल प्रतीत होते हैं जैसे तब थे।

अतः हमें प्रवचन छोड़ प्रेम-प्रवृत्ति का सहारा लेना चाहिए। प्रेम की प्रेरणा से प्रभु-चरणन में जा। जिस पथ पर प्रेम चलावे उस पर चलना चाहिए। चलते २ हम एक दिन भगवान को प्राप्त कर लेंगे। उस ध्येय तक पहुँच जाएंगे जिसको अब

हम [illegible] प्राप्त करना चाहते हैं। चलने से मंज़िल तय होती है। खड़ा रहना जीवन का ध्येय नहीं। खड़ा रहना गति को बन्द करने का नाम है। इस संसार में खड़े रहने वाले पिछड़ जाते हैं। जीवन, गति का दूसरा नाम है। गति-हीनता से मृत्यु मिलती है। अतः चलो। कर्म करो। धर्माचरण की राह लो। मन्ज़िल ओर कदम बढ़ाओ। तुम्हें तुम्हारा ध्येय मिल जाएगा।
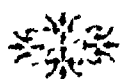
दूसरों के लिये जीना सीखो

संसार का यह विचित्र नियम है कि जो केवल अपने लिए जीना चाहता है वह मृत्यु को प्राप्त होता है। चराचर जगत में सर्वत्र सिलवर्तन का सिद्धान्त व्यापक हो रहा है वनस्पतियां हमे ओपजन (औक्सिजन) देती हैं। ओपजन हमारे जीवन का आधार है। हम उसके बदले मे वनस्पतियों को कारवन डाया औक्साईड (एक विपैली गैस) देते हैं। जो उन के जीवन का आधार बनती है।इस प्रकार स्वयं प्रकृति देवी हमे अन्योन्याश्रय का सिद्धान्त सिखाती है।

इस सिद्धान्त का निष्कर्ष यही है कि हमें दूसरों के लिए जीना चाहिए। सच्चा स्वार्थ परमार्थ मे रहता है। जो दूसरों के लिए जीते हैं, जीवन का आनन्द उन्हीं को प्राप्त होता है। जो केवल अपने लिए जीते हैं, अपने लिए खाते हैं वे शास्त्रों की परिभाषा में पापी कहलाते हैं। "केवलाघो भवति केवलादी।"

क्या तुमने नहीं सुना कि जो दूसरों के खिलाए विना खाता है वह चोरी करता है ? एक सुखी परिवार का चिन्तन करो, उस मे तुम देखोगे सब एक दूसरे के लिए जीते हैं। पति पत्नी के लिए जीता है तो पत्नी पति के लिए जीती है। माता पिता यदि सन्तान के लिए जीते हैं तो सच्ची सन्तान अपने माता पिता के लिए जीती है। भाई वहिनो में भी यही प्रेम का सूत्र ओत-प्रोत दिखाई देता है। दूसरों के लिए जीना सीखो। आर्य्य-समाज का नवां नियम कभी मत भूलो "प्रत्येक मनुष्य को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सब की उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिए।"

स्वर्ग और नरक

साधारण जनता मे स्वर्ग और नरक के सम्बन्ध मे बहुत से भूठे विचार फैल रहे हैं। धर्मवादी इन विचारो को दृढ़ करते रहते हैं। नरक के भयानक चित्र खीच कर भोले भाले व्यक्तियो को ये लोग ठगते हैं। इन की दृष्टि मे भले लोग स्वर्ग मे तथा बुरे लोग नरक मे जाते हैं। और यह स्वर्ग तथा नरक परलोक मे बताया जाता है।

यदि नरक की कल्पना का निराकरण कर दिया जाए तो संसार में आधा दुःख मिट जाता है। परलोक मे स्वर्ग, नरक की कल्पना करना न केवल निरर्थक है अपि तु निश्चित रूप से हानिकारक है। ऋषि दयानन्द ने स्वर्ग, नर्क की सत्ता इसी संसार मे मानी है। हम अपने नरक और स्वर्ग को स्वयं बनाते हैं, अपने सामने दूसरो को बनाते देखते हैं।

हमारे कर्म ही स्वर्ग नरक का साधन हैं। पुण्यात्मा लोग
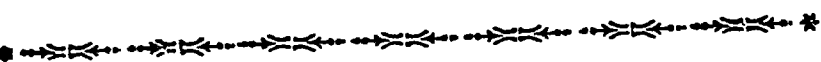
संसार मे स्वर्ग की स्थापना करते हैं। पापात्मा मनुष्य चलते-फिरते नरक की मूर्ति हैं। जहां सच्चा प्रेम है वहीं स्वर्ग है। जहां कलह, क्लेश, वैमनस्य आदि नीच भावों का वास है वहीं नरक है।

भाई, वहन तथा पति, पत्नी की मीठी मुस्कान में, हर्षित हृदय में, स्वर्ग दीखता है। माता पिता के परिश्रम-मय जीवन में, मृदु स्वभाव तथा कोमल प्रकृति मे वच्चो को सच्चा स्वर्ग मिलता है। स्वर्ग तुम्हारे अपने मन मे है। दिन मे जव तुम अपने हृदय को उदारता, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास तथा सेवा आदि के भावों से भरा हुआ पाते हो तभी तुमको स्वर्ग की झलक दिखाई देती है।

जिस गृह मे यह भाव मिलते हैं वही गृह स्वर्ग धाम है। जिस गृह मे इन भावो के विपरीत नीच कुत्सित भावो की प्रधानता पाई जाती है वही गृह नरक-स्वरूप होता है। आओ हम प्रतिज्ञा करे कि हम जीवन-पर्यन्त अपने आप को तथा इस संसार को स्वर्ग-स्वरूप वनाने का यत्न करेंगे।

❀❀ ❀❀ ❀❀

स्त्री पुरुष (१)

इस संसार की भौतिक शक्तियो की विवेचना विज्ञान-वेत्ता करता है। उस विवेचना के आधार पर दर्शनकार अपनी कल्पना के पतङ्ग उड़ाता है। जब तत्त्व-निर्णय का समय आता है तो 'नेति,' 'नेति' कह कर दर्शनकार चिल्ला उठता है। सचमुच यह ब्रह्माण्ड एक विचित्र लीला का रूप धारण किये हुए है। जर्मन-देशीय काण्ट महोदय कहा करते थे "जब मैं तारों भरी रात्रि में अपना मुँह ऊपर उठा, आकाश की ओर निहारता हूँ और उसके रहस्यमय स्वरूप को विचारता हूँ तो आश्चर्य-चकित रह जाता हूँ।" यह ठीक है, सब विचार-शील मनुष्यो के हृदय की अवस्था ठीक इसी प्रकार होती है जब वे पृथ्वी के अन्तर्गत किसी पदार्थ पर गहरा विचार करते हैं।

परन्तु सब भौतिक शक्तियों से अधिक रहस्य-मय शक्तियां स्वयं स्त्री तथा पुरुष हैं। जब से संसार में इन दो शक्तियों का
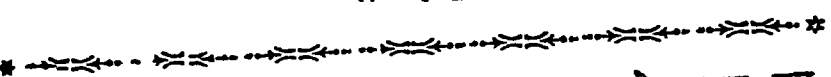
आगमन हुआ है, तब से सृष्टि का रहस्य गूढ़ से गूढ़तम बन गया है। संसार का सारा इतिहास इन दोनों शक्तियों के इतिहास का नाम है यह विचित्र खेल जिसको मनुष्य-समाज का नाम दिया जाता है, इन्हीं दोनों शक्तियों की लीला का प्रसार है। जितना अधिक हम स्त्री पुरुष की सत्ता, उनके लक्ष्य तथा कार्य्यक्षेत्र की विवेचना करते हैं, उतना ही अधिक उनका जीवन हमें रहस्य-पूर्ण प्रतीत होता है। यह रहस्य शीघ्रता से खुलने का नहीं। इसे समझने के लिए तुम्हें अन्तर्मुखी बन कर चिरकाल तक स्वाध्याय शील बनना होगा।

स्त्री पुरुष (२)

स्त्री पुरुष की सत्ता रहस्यमय है। उनका परस्पर संसर्ग और भी अधिक रहस्यमय है। देखिये किस प्रकार उनके सहवास से सृष्टि रचना का प्रसार होता है! यह बालक, यह कन्या, यह भाई, यह बहन, यह माता, यह पिता, यह मित्र और बन्धु सारे नाम उनके रहस्यमय जीवन के परिणाम हैं। जब तुम स्त्री पुरुष की सत्ता को ही नहीं समझ सकते तो उस सत्ता के प्रसार मनुष्य-समाज को समझने का साहस कैसे कर सकते हो?

परन्तु समझने का साहस किये बिना काम भी तो नहीं चलता। गृहस्थ में जकड़ा हुआ मनुष्य, समाज में रहता हुआ व्यक्ति, अपनी जीवन-यात्रा को सुखमय बनाना चाहता है। अतः वह अपनी सत्ता के रहस्य को बुद्धि के द्वारा नहीं खोलता। यह मार्ग उसको कठिन प्रतीत होता है इसलिए वह दूसरे मार्ग का

अवलम्बन करता है। वह अपने चारों ओर की चीज़ों की सत्ता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करता। जिस चीज़ को वह अपनी आँखों से देखता है उसकी सत्ता को मान लेता है। ऐसा मान लेने से उसकी बहुत सी कठिनाइयों हल हो जाती हैं।

समाज के भीतर रहता हुआ व्यक्ति अपने आप को कर्तव्यों के पाश मे जकड़ा हुआ पाता है। यदि वह उन कर्तव्यों के प्रति प्रति तर्कना को छोड़, उनके पालन में लग जाता है तो उसके लिए जीवन का रहस्य खुल जाता है। निकटवर्ती कर्तव्यों के पालन करते करते वह दूरवर्ती कर्तव्यों का पालन भी कर लेता है। इस प्रकार कर्तव्य-परायण होकर स्त्री पुरुष अपनी जीवन-यात्रा को सफल बना लेते हैं। कर्तव्य-परायण जीवन ही कर्म-योग का दूसरा नाम है।

विवाह (१)

स्त्री-पुरुष का परस्पर-सहवास विवाह से प्रारम्भ होता है। विवाह एक अति प्राचीन संस्था है। इसके सम्बन्ध मे अनेक कल्पनाएं जुटाई जा चुकी हैं। समाज के क्षेत्र में यह एक अनिवार्य्य घटना है एक पाश्चात्य विद्वान ने विवाह का मजाक उड़ाते हुए लिखा है, विवाह एक ऐसी संस्था है कि जो लोग उसके भीतर है, वे बाहर निकलना चाहते हैं और जो लोग उसके बाहर हैं, वे उसके भीतर प्रवेश करना चाहते है; यह मजाक विवाह-सम्बन्ध की प्रबलता, व्यापकता तथा अनिवार्य्यता प्रकट करता है। विवाह-सम्बन्ध स्त्री-पुरुष के नैसर्गिक आकर्षण का फल स्वरूप है। प्रकृति देवी की उपज है। इसे हंसी का विषय बनाया जा सकता है, परन्तु हंसी से सर्वदा इसकी अवहेलना करते रहने से मनुष्य-समाज की शृङ्खला ढीली पड़ जाती है।

देश, धर्म्म और जाति की उन्नति जितनी विवाह पर आश्रित है, उतनी किसी अन्य संस्था पर नही । विवाह रूपी संस्था की अच्छाई पर सारी भलाई का दारोमदार है । इस संस्था के विगड़ जाने पर समाज का उन्नति-भवन एक दम मटियामेट हो जाता है तुम्हारे देश में विवाह का जो महत्त्व शास्त्रो ने प्रकट किया है, उसकी उपमा अन्य किसी देश के इतिहास में नहीं मिलती । पाश्चात्य-संसार विवाह को केवल एक कानूनी सम्बन्ध (Leg।l contract) मानता है । परन्तु अपने यहाँ, भारतवर्ष मे इसको आध्यात्मिक सम्बन्ध (sacrament) माना गया है । दोनो मे बड़ा अन्तर है ।

विवाह (२)

कानूनी सम्बन्ध समय की अपेक्षा करता है। समय के साथ सम्बन्ध रखते हुए वह समय की अड़चनों के अधीन रहता है। वे अड़चनें उस के टूटने में साधक बनती हैं। तलाक उन अड़चनों का सीधा और सरल इलाज बतलाया जाता है। दूसरी ओर आध्यात्मिक सम्बन्ध मानने से विवाह की सार्थकता, स्थिरता तथा गम्भीरता बहुत बढ़ जाती है। विवाह दो आत्माओं के परस्पर मिलाप का रूप धारण कर लेता है। उस का गौरव तथा महत्त्व हमारी दृष्टि में बहुत ऊँचा हो जाता है।

जो युवक अथवा युवती विवाहित को तैय्यार हों, उन्हें गम्भीरता-पूर्वक इस विषय का विचार करना चाहिए। हलके दिल से यदि आवश्यक बातों की अपेक्षा की जावे तो भयानक परिणाम पैदा होते हैं। विवाह ऐसी संस्था है जिस की अच्छाई

बुराई पर सारे देश और जाति की अच्छाई बुराई अवलम्बित रहती है। इस लिए युवकों और युवतियों को इस की ओर कदम बढ़ाने से पूर्व बारम्बार सोच लेना चाहिए। ख़ूब सोचना चाहिए। सोच विचार कर अपनी मनोवृत्ति स्थिर करनी चाहिए। धर्म्म-शास्त्रों के अनुसार विवाह से पूर्व का काल एक भारी तैय्यारी का काल माना गया है उसी को ब्रह्मचर्य्याश्रम कहते हैं। इस आश्रम में इन्द्रिय-निग्रह को मुख्य धर्म्म बताया है। विवाह के विशाल भवन को ब्रह्मचर्य्य की दृढ़ चट्टान पर खड़ा करने से असीम सुख की प्राप्ति होती है।
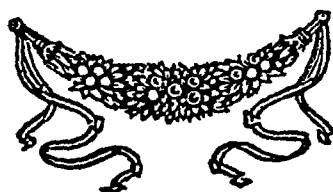
विवाह (३)

पाणिग्रहण

वैदिक विवाह में स्त्री पुरुष का सम्बन्ध बराबरी का माना गया है। वेद स्त्री-पुरुष को परस्पर मित्रवत् बर्तने का आदेश देते हैं। आधुनिक नवीन सभ्यता भी इस बराबरी के सम्बन्ध का समर्थन करती है। स्त्री पुरुष आपस मे एक दूसरे के सहचारी, सहकारी तथा सहायक होने चाहिएं। विवाह-मर्यादा में जो पाणिग्रहण की रस्म प्रचलित है उस के अनुसार लड़का लड़की एक दूसरे का हाथ पकड़ते हैं। इस का प्रायः यह तात्पर्य्य लिया जाता है कि लड़की का हाथ लड़के के हाथ मे देकर उसको सर्वथा लड़के की रक्षा मे सौंप दिया जाता है। इसी लिए लड़की को रक्षणीया और लड़के को रक्षक माना जाता है। मेरी सम्मति मे पाणिग्रहण की रस्म इस से अधिक गम्भीर भाव का प्रदर्शन करती है।

हाथ में हाथ लेना दोनो ओर से होता है, अतः रक्षा का भाव भी दोनों ओर समझना चाहिए। यह निर्विवाद सत्य है कि स्त्री पुरुष की उतनी ही रक्षा करती है जितनी पुरुष स्त्री की करता है। यदि पुरुष को स्त्री का रक्षक कहा जावे तो स्त्री को जाति की रक्षिका मानना पड़ेगा। धैर्य्य और धृति द्वारा जितनी रक्षा स्त्री कर सकती है उतनी पुरुष के लिए सम्भव नहीं। साहस के जितने कार्य्य पुरुष संग्राम-क्षेत्र मे कर दिखाता है, उन से अधिक साहस के कार्य्य प्रतिदिन स्त्री अपने गृह मे कर दिखाती है। संग्राम से भी उसे कोई भय नहीं होता। समय पड़ने पर वह संग्राम का दुःख अपने लिए विश्राम का सुख मानने लग जाती है। वर्तमान राजनीतिक आन्दोलन मे भारतीय महिलाएं मेरे उपर्युक्त कथन का समर्थन कर रही हैं।

विवाह (४)

प्रतिज्ञाएं

विवाह के समय वर वधू जो प्रतिज्ञाएं करते हैं वे भी विवाह-सम्बन्ध की गम्भीरता को प्रकट करती हैं। इन प्रतिज्ञाओं मे परस्पर विश्वास, प्रेम तथा आदर के भाव कूट कूट कर भरे रहते हैं। गृहस्थ मे प्रवेश करने के पीछे यदि इन प्रतिज्ञाओं को भुला न दिया जावे, तो गृहस्थाश्रम के सुख-धाम सिद्ध होने मे सन्देह नहीं रहता। शोक इस बात का है कि विवाह-वेला की प्रतिज्ञाएं विवाह-मण्डप मे ही छूट जाती हैं। जीवन-संग्राम मे गृहस्थी उन प्रतिज्ञाओं को भुला देते हैं। यदि तुम विवाहित हो तो एक बार फिर उन प्रतिज्ञाओ को याद करो। सप्तपदी के अर्थों को समझो। तुम्हारा दृष्टिकोण बदल जाएगा। परस्पर स्नेह, एक दूसरे पर अटूट श्रद्धा, विश्वास और भक्ति आदि भाव जिन पर गृहस्थाश्रम का सारा सुख

निर्भर रहता है, ऐसी चीजें नहीं जिनकी अवहेलना करके हम लोग वैवाहिक जीवन को सफल वना सकते हों।

विवाह के समय प्रतिज्ञा करते हुये वर-वधू दोनों विद्वानों का आह्वान करते हैं। उन से अर्शीवाद मांगते हैं। उन्हें अपनी प्रतिज्ञाओं का साक्षी वनाते हैं। आश्चर्य इस वात का है कि प्रश्न को इतना गम्भीर वना कर पुनः दैनिक जीवन मे इतने हलके दिल से उनकी अवहेलना की जाय!

यदि तुम फिर से इस देश में स्त्री जाति के लिये सम्मान पैदा करना चाहते हो, तो वच्चों को प्रारम्भ से ही स्त्री जाति का आदर करना सिखाओ। यदि कोई व्यक्ति कभी स्त्रियों के प्रति अपमान सूचक शब्द प्रयोग करे, तो उसको याद दिलाओ कि उसकी माता भी स्त्री है। यह स्मरण उसकी आंखे खोल देगा। वह फिर होश से वोलेगा। स्त्रियो के प्रति अनादर दिखलाते हुये शर्मायगा। जिन वच्चों को माता की गोद से स्त्री जाति का सम्मान सिखाया जाता है वे अपने जीवन मे सदैव सच्चे पारिवारिक सुख को प्राप्त करते हैं। उन्हे अपनी माता वहन तथा पत्नी के स्वर्गीय प्रेम-सुख का अनुभव होता है। यही अनुभव उन के जीवन को आनन्दमय वनाता है।

खान पान (१)

संसार मे दो प्रकार के मनुष्य मिलते हैं। एक वे जो खाने के लिये जीते हैं, दूसरे वे जो जीने के लिए खाते हैं। पहली श्रेणी के मनुष्यो का जीवनोद्देश खाना, पीना, पहरना, सुख से रहना होता है। "यावज्जीवेत्सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्" ऐसा मान कर वे जीवन मे खूब उच्छृङ्खल बन कर विचरते हैं। दूसरे प्रकार के मनुष्य खान पान को जीवन-यात्रा के लिए साधन-मात्र समझते हैं उनका उद्देश जीवन को सार्थक सिद्ध करना है। इस के लिये उचित आहार को वे ग्रहण करते हैं। जिस आहार को वे जीवन की उन्नति का साधन समझते हैं, उसे स्वीकार करते हैं। विपरीत इस के जो आहार जीवन-विकास को रोके अथवा अवनति की ओर ले जावे, उसे त्याज्य समझते हैं।

खाना रसना की तृप्ति के लिए न होना चहिए अपि तु

जीवन यात्रा को वनाए रखने के लिए। शरीर काम करते २ जव थक जाता है तो क्षीण होने लगता है। उसकी थकावट दूर करने तथा उसमें फिर से तरो-ताजगी लाने के लिए उसको भोजन की जरूरत पड़ती है अतः भोजन पौष्टिक होना चाहिए उसमें वे सव गुण होने चाहिएं जो शरीर की शक्ति और कार्य्य-क्षमता वढ़ाने वाले हों। जो भोजन मनुष्य की शक्ति का ह्रास करने वाला हो अथवा उसको आलसी, रोगी तथा दोषयुक्त वनाने वाला हो उसे त्याग देना चाहिए।

खान-पान (२)

आहार तीन प्रकार का होता है। दुग्धाहार सब से श्रेष्ठ माना गया है। यह मनुष्य का नैसर्गिक आहार है। बचपन से उसे मिलता है। दूध में वे सब अंश विद्यमान हैं जो शरीर के अंगों की वृद्धि के लिए लाज़मी हैं। यह शरीर की गर्मी को बनाए रखता है तथा मानसिक जीवन के सर्वथा अनुकूल सिद्ध होता है।

दुग्धाहार के दूसरे दर्जे पर अन्नाहार है। अनाज गेहूँ आदि के खाने से मनुष्य को स्टार्च (निशास्ता) तथा ग्लूटन (पट्ठे बनाने वाला अंश) प्राप्त होता है। स्टार्च से गर्मी उत्पन्न होती है। अनाज से क्षार तथा हड्डी बनाने वाले अंश भी मिल जाते हैं। प्रकृति ने अनाज में वह शक्ति प्रदान की है जिसके कारण मनुष्य खूब स्वस्थ तथा सुदृढ़ बन जाता है। दूध, घृत, दही, दाल,

चावल, अन्न, शाक चीनी तथा इन पदार्थों के रूपान्तर मनुष्य के लिए पर्य्याप्त खाद्य सामग्री उपस्थित कर देते हैं।

मांसाहार सब से निकृष्ट आहार है। यह सात्विक आहार नहीं। मनुष्य की उच्च प्रकृति के विकास में इस आहार के कारण बाधा पड़ती है। यतः यह आहार हिंसा वृत्ति से प्राप्त किया जाता है अतः मनुष्य के स्वभाव में इसके सेवन से क्रूरता, निष्ठुरता तथा स्वार्थपरता इत्यादि नीच गुण पैदा हो जाते हैं। जहाँ तक बन पड़े इस आहार से बचना चाहिए।

अपने से नीचे दर्जे के प्राणियों पर दया दृष्टि रखो। उनके अपने स्वार्थ की सामग्री बना कर प्रसन्न मत होवो। जो जीवन तुम दे नहीं सकते उसको ले कर ख़तम कर देना अच्छे भाव का प्रदर्शन नही कहा जा सकता। क्या सात्विक आहार की संसार मे कमी है जो तुम तामसिक और राजसिक आहार की ओर जाते हो। खाओ पीओ, किन्तु अपने खान पान मे अपने मनुष्यत्व को न भूल जावो। हम इन्सान हैं, हैवान नहीं। इस बात को सदा ध्यान में रखो कि हम जैसा खाएंगे तदनुसार बन जाएंगे। अन्न से मन बनता है।

खान-पान (२)

खान-पान के सम्बन्ध में कई छोटी मोटी बातें सदा ध्यान में रखनी चाहिएं। एक विद्वान् का कथन है कि सौ में से नव्वे बीमारियां पेट की ख़राबी से पैदा होती हैं। अतः पेट की सफ़ाई पर खूब ध्यान देना चाहिए। क्या खाना, कितना खाना और कब खाना इस का अन्दाज़ा प्रत्येक व्यक्ति को अपने अनुभव से स्वयं लगाना चाहिए। थोड़ा खाना, भूख रख कर खाना लाभकारी होता है। अधिक खाना, पेट भर कर खाना हानिकर होता है। याद रखो, संसार में भूख से इतने लोग नहीं मरते जितने अधिक खाने से मरते हैं। खाना, खाना, बार बार खाना, खाते रहना, खा कर सो जाना और सो कर फिर खाना यह नीति अच्छी नहीं। ऐसा तो पशु भी नहीं करते। उनका भी खाने और जुगाली का समय नियत होता है।

जब भूख लगे खाओ। भूख से बढ़ कर भोजन के लिए

कोई दूसरी चटनी नहीं। भूख के समय भोजन जितना स्वादिष्ट
लगता है, उतना किसी मिर्च मसाले से स्वादिष्ठ नहीं हो सकता।
भूख व्यायाम से जागृत होती है। अतः व्यायाम की रुचि
सदा बनाए रखो। खाते समय धीरे धीरे खाओ। खूब चबाकर
खाओ। प्रसन्नवदन होकर खाओ। कुढ़ते कुढ़ते खाना रोग
को निमन्त्रण देना है। क्रोध के आवेश मे खाने मत बैठो।
शान्तचित्त होकर यदि भोजन करोगे तो स्वास्थ्य उपलब्ध
होगा। भोजन के साथ यदि पानी पीना छोड़ सको तो बहुत
अच्छा है। मंदाग्नि वालो के लिए यह हितकर होगा।

कभी कभी केवल फलाहार ही किया करो। आमाशय
को एक ही प्रकार के खाद्य-पदार्थों का आदी बनाना ठीक नहीं
अतः आहार मे विभिन्नता का अंश अवश्य लाना चाहिए।
फल, कच्ची तरकारियो का खाना आजकल डाक्टर लाभ
कारी बताते हैं। याद रखो जैसा आहार होता है वैसा आचार
बनता है। शुद्धाहार से शुद्ध रक्त पैदा होता है। शुद्ध रक्त से
उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है। उत्तम स्वास्थ्य से उत्कृष्ट आचरण
उपलब्ध होता है। उत्कृष्ट आचरण ही मनुष्य जीवन का सार
है जिसकी प्राप्ति सब धर्म्मों का ध्येय है

❀❀ ❀❀ ❀❀

खान-पान और सौन्दर्य्य

खान-पान का सौन्दर्य्य के साथ गहरा सम्बंध है, इस तथ्य को सभ्य संसार अनुभव करने लगा है। पाश्चात्य समाचारपत्रों में इस विषय के कई लेख निकलते रहते हैं, कि अमुक प्रकार के आहार से मनुष्य के अंगों और चेहरे की ख़ूबसूरती बढ़ती है। एक सौंदर्य्य-विशेषज्ञ का कथन है कि यदि हम ठीक समय पर तथा ख़ूब चबाकर भोजन किया करें तथा भोजन करते समय हमारा मन प्रसन्न तथा शांत होवे तो मनुष्य का सौन्दर्य्य अवश्य बढ़ता है।

चेहरे की रंगत को बदलने के लिए भी सौन्दर्य्य-विशेषज्ञों ने बहुत से उपाय बताए हैं, उन में सब से बड़ा उपाय यह है कि भोजन ऐसा हो जो रक्त को शुद्ध बनावे तथा उस की गति को नियमानुसार रखे। चेहरे का सौंदर्य्य जितना रक्त पर आश्रित रहता है उतना और किसी चीज़ पर नहीं।

शरीर में शुद्ध रक्त का संचार फलाहार से अच्छी तरह हो सकता है। फलों में सेव, अंगूर, नारंगी, आम, केला, पपीता, सब से अच्छे गिने गये हैं। इन के द्वारा रक्त बढ़ता है, शुद्ध होता है तथा भली प्रकार गति करता है।

इसी प्रकार दूध, मक्खन, छाछ, तथा मलाई का सेवन भी अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। सच पूछो तो स्वास्थ्य ही सौंदर्य्य प्रदान करता है। उत्तम पदार्थों के सेवन से स्वास्थ्य उपलब्ध होता है और स्वास्थ्य से सौन्दर्य्य। सात्विक आहार ही सौन्दर्य्य का मूल कारण है उसी की ओर अपनी प्रवृत्ति बनानी चाहिए।

दो प्रामाणिक ग्रन्थ

(१)

मनोविज्ञान

प्रो० सुधाकर जी की अद्वितीय कृति
हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से मंगलाप्रसाद-
पारितोषक पाने वाली रचना

बच्चों के शिक्षकों के लिए मनोविज्ञान
पढ़ना अनिवार्य है।

कालेजों के छात्रों के लिए
सुगम पाठ्य ग्रन्थ

दाम २)

शारदा मन्दिर, १७ बारहखंभा, नई दिल्ली

भारतभूमि

और

उस के निवासी

लेखक—प्रो० जयचन्द्र विद्यालङ्कार

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से

सं० १९८८ की सर्वोत्तम हिन्दी रचना

मानी जा कर द्विवेदी-पदक पाने वाली पुस्तक

अपनी मातृभूमि की जानकारी पाये विना
आप शिक्षित नहीं कहला सकते; वह जानकारी
एकमात्र इसी ग्रन्थ से पाइएगा।

"अद्‌भुत और अनमोल पुस्तक"

—आचार्य द्विवेदी

"लोगों की आँखें खोल देगी"

—रा० ब० हीरालाल

अजिल्द २) सजिल्द २।)

शारदामन्दिर, १७ बारहखंभा, नई दिल्ली